# मुक्तिबोध का रचना संसार
# एक विशलेषणात्मक अध्ययन

**MUKTIBODH KA RACHANA SANSAR**
**EK VISLESHANATMAK ADHYAYAN**

Thesis submitted to

**COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY**

For the Degree of

Doctor of Philosophy


**By**

**JESTY EMMANUEL**

Supervising Teacher
Dr. A. ARAVINDAKSHAN
(Prof. & Head of the Dept.)

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
**KOCHI - 682 022**


2002

# CERTIFICATE

*This is to certify that this thesis entitled* ***'MUKTIBODH KA RACHANA SANSAR EK VISLESHANATMAK ADHYAYAN'*** *is a bonafide record of work carried out by* ***Smt. Jesty Emmanuel*** *under my supervision for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, of the* ***Cochin University of Science and Technology, Kochi*** *and no part of this has, hitherto, been submitted for a degree in any other University.*

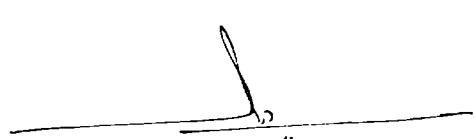

**Dr. A. ARAVINDAKSHAN**
Professor and Head of the Dept. of Hindi
Supervising Teacher
Department of Hindi,
Cochin University of Science
and Technology, Kochi 682022

Date :30·12·2002

# DECLARATION

*I hereby declare that this thesis entitled* ***'MUKTIBODH KA RACHANA SANSAR EK VISLESHANATMAK ADHYAYAN'*** *is a bonafide record of work carried out by me for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, in the Faculty of Language and Literature of the* ***Cochin University of Science and Technology Kochi*** *and no part of this has, hitherto, been submitted for a degree in any other university.*

Jesty Emmanuel

**JESTY EMMANUEL**
Department of Hindi,
Cochin University of Science
and Technology, Kochi - 682022

Date : 30 12 2002

# अपनी ओर से

मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक चर्चित रचनाकार हैं। जीवन संघर्ष के व्यक्तिनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ प्रतिमान साहित्य में प्रतिष्ठित करने का श्रेय मुक्तिबोध को जाता है। साहित्य में तनाव को प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी उन्हीं को मिलेगा। आधुनिक कविता, आधुनिक कथा, आधुनिक आलोचना और आधुनिक चिंतन को प्रशस्त करने में मुक्तिबोध का महत्वपूर्ण योगदान है। इसलिए आगे के युग पर भी मुक्तिबोध का प्रभाव पडा। इस प्रभाव को सभी रचनाकारों ने खुले मन से स्वीकार किया हैं। यही उनकी प्रासंगिकता हैं।

मुक्तिबोध की कोई भी साहित्यिक विधा शोध केलिए पर्याप्त है। कहानी, कविता, आलोचना, इतिहास में से किसी को शोध कार्य केलिए स्वीकार किया जा सकता है। लेकिन प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक है 'मुक्तिबोध का रचना संसार एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'। इसमें उनकी मुख्य रचनात्मकता को शोध केलिए चुना गया है। कविता, कहानी और आलोचना को विषय के रूप में ले लिया गया है। मुक्तिबोध की संवलेंद्रनात्मक संभावनाओं को समझने केलिए ही इस गंभीर विषय को लिया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध छह अध्यायों में विभक्त है। अध्यायों के प्रतिपाद्य इस प्रकार है।

पहला अध्याय 'मुक्तिबोध का रचना व्यक्तित्व' है। उसके अंतर्गत एक सशक्त रचनाकार के रूप में मुक्तिबोध का परिचय दिया गया है। साहित्य के क्षेत्र में मुक्तिबोध की भूमिका, मुक्तिबोध का जीवन वृत्त, मुक्तिबोध के रचनाकाल के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश और साहित्यिक परिस्थितियाँ, मुक्तिबोध की प्रतिक्रियायें, मुक्तिबोध की रचनाएँ, मुक्तिबोध का साहित्यिक विकल्प आदि पर प्रकाश डालते हुए मुक्तिबोध की प्रासंगिकता इस अध्याय में चर्चित है।

दूसरा अध्याय है 'मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं का विश्लेषण'। इसके अंतर्गत मुक्तिबोध की तारसप्तक में संकलित कविताओं का विश्लेषण किया गया है। तारसप्तक के कवि के रूप में मुक्तिबोध को चित्रित करते हुए तारसप्तक का महत्व,

तारसप्तक और मुक्तिबोध, मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं की मनोभूमि, छायावादी रोमानियत की स्पष्ट छाया, आत्मनिष्ठता की पृष्ठभूमि, काल की गतिशीलता, विश्वदृष्टि की खोज, प्रगतिशीलता की ओर उन्मुक्तता और तार सप्तकीय कविताओं की शिल्प संरचना को तारसप्तकीय कविताओं के संदर्भ में देखा गया है।

तीसरा अध्याय का शीर्षक है 'मुक्तिबोध की कविता में व्यवस्था विरोध'। इसके अंतर्गत मुक्तिबोध के दोनों काव्य संकलनों 'चाँद का मुँह टेढा है' और 'भूरी भूरी खाक धूल' के कविताओं से गुज़रते हुए उन कविताओं में दृष्टिगोचर होनेवाली मुक्तिबोध की कविताओं की मनोभूमि, विश्वदृष्टि से अनुप्राणित काव्य, जीवन संवेदना के धरातल पर मार्क्सवाद की स्वीकृति, वर्ग वैषम्य का दर्द, पूँजीवाद का विरोध, सांस्कृतिक विघटन के आयाम, राजनीति की सही दिशा, गुलामी की जंजीरें टूँटें, आदि पर प्रकाश डाला गया है तथा कविताओं के आधार पर यथार्थ, विश्वदृष्टि आदि के संबंध में मुक्तिबोध की अवधारणाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। इसमें संकलन के बाहर की कविताओं पर भी विहंगम दृष्टि डाली गयी है।

चौथा अध्याय का शीर्षक है 'व्यवस्था और आदमी'। इसमें मुक्तिबोध की कविताओं के संदर्भ में व्यवस्था की अमानवीयता तथा उसमें निरंतर पिसते हुए आदमी पर ज़ोर दिया गया है। मुक्तिबोध की कविता को समझने केलिए उनके द्वारा प्रस्तुत मनुष्य के बिंब को परखना ज़रूरी है। यह मनुष्य भी है मानवीय स्थिति भी है। इसलिए उनकी कविता की तह तक जाने केलिए मनुष्य को केंद्र में रखकर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय का शीर्षक है 'मुक्तिबोध की कहानियों का विशेलेषण'। इसके अंतर्गत हिन्दी कहानी और मुक्तिबोध, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग और नयी कहानी के क्षेत्र में मुक्तिबोध की भूमिका, मुक्तिबोध की कहानियों का कथ्य परिदृश्य, पूँजीवादी सत्ता का पर्दाफाश, मध्यवर्गीय जीवन के विविध आयाम, राजनीतिक संकट की कहानियाँ, पारिवारिक कहानियों का नया रूप, मुक्तिबोध की कथा संवेदना, मुक्तिबोध की कहानियों का रचनाविधान आदि उपशीर्षकों के सहारे कहानी के क्षेत्र में मुक्तिबोध के मौलिक अवधान का विश्लेषण किया गया है।

छठा अध्याय का शीर्षक है 'मुक्तिबोध की आलोचना'। इसमें मुक्तिबोध की आलोचनात्मक कृतियों का विश्लेषण किया है। इसके अंतर्गत हिन्दी आलोचना और मुक्तिबोध, साहित्य का समाज दर्शन, मुक्तिबोध का रचनात्मक संघर्ष, रचना प्रक्रिया, ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान आदि उपशीर्शकों के विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है 'कामायनी एक पुनर्विचार' शीर्षक ग्रन्थ और अन्य व्यावहारिक आलोचनात्मक लेखों पर भी प्रकाश डाला गया है।

उपसंहार के अंतर्गत इन सभी बिंदुओं को लेकर समग्र रूप से विचार किया गया है।

सर्वाप्रथम मैं कृतज्ञता सहित आभारी हूँ परमादरणीय गुरुवर डॉ. ए. अरविंदाक्षनजी (प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, कोचिन विश्वविद्यालय, कोचिन-२२) की, जिन्होंने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बीच भी स्नेह और वात्सल्यपूर्वक मुझे इस शोध प्रबंध केलिए विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन प्रदान किया। धन्यवाद शब्द कहकर ऋणमुक्त होना असंभव है ''तस्मै श्री गुरवे नमः।''

आद्याक्षर से लेकर इस शोध प्रबंध के पूरा होने तक जिन गरुजनों ने मेरी सहायता की उनके प्रति इस समय मैं हृदय से कृतज्ञता अर्पित करती हूँ।

धन्यवाद पुस्तकालय के अधिकारियों को जिन्होंने मेरी सहायता की।

स्मरण कर रही हूँ माता पिता को जिनके आशिर्वाद ने मुझे यहाँ तक पहुँचाया।

शुक्रिया अदा, मित्रों एवं बन्धुजनों को जो इस प्रयास में मेरे सहायक रहे।

यह शोध प्रबंध आकार ग्रहण कर रहा है खूबियों तो संदिग्ध है, परंतु खामियाँ निश्चित हैं। उन खामियों केलिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

Jesty Emmanuel.

जस्टी एम्मानुवल

हिन्दी विभाग

कोचिन युनिवेर्सिटि ऑफ सयन्स ऐंट टेक्नोलजी

कोचिन-२२

तारीख :30.12.2002

# विषयानुक्रमणिका


पृष्ट संख्या

**अध्याय एक**

**मुक्तिबोध का रचना व्यक्तित्व** 1

भूमिका - मुक्तिबोध का जीवन वृत्त, मुक्तिबोध के रचनाकाल के सामाजिक, राजनीतिक एवं सास्कृतिक परिवेश - साहित्यिक परिस्थितियाँ - मुक्तिबोध की प्रतिक्रियायें - साहित्यिक प्रतिक्रिया - मुक्तिबोध की रचनाएँ - मुक्तिबोध का साहित्यिक विकल्प - मुक्तिबोध की प्रासंगिकता।

**अध्याय दो**

**मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं का विश्लेषण** 31

तारसप्तक का महत्व - तार सप्तक और मुक्तिबोध - मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं की मनोभूमि - छायावादी रोमानियत की स्पष्ट छाया - आत्म निष्ठता की पृष्ठभूमि - काल की गतिशीलता - विश्वदृष्टि की खोज प्रगतिशीलता की ओर उन्मुक्तता - मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं की शिल्प संरचना।

**अध्याय तीन**

**मुक्तिबोध की कविता में व्यवस्था विरोध** 56

मुक्तिबोध की कविताओं की मनोभूमि विश्वदृष्टि से अनुप्राणित काव्य जीवन संवेदना के धरातल पर मार्क्सवाद की स्वीकृति वर्ग वैषम्य का दर्द -पूँजीवाद का विरोध - समझौतापरस्ती का विरोध सांस्कृतिक विघटन के आयाम राजनीति की सही दिशा - गुलामी की जंजीरें टूटें।

**अध्याय चार**

**मुक्तिबोध की कविताओं में व्यवस्था और आदमी** 95

व्यवस्था और आदमी - व्यवस्था की अमानवीयता शोषण की जडों की तलाश - व्यवस्था में पिसता आदमी - समझौतापरस्त बुद्धिजीवी - आत्मसंघर्ष का इस्पाती दस्तावेज - पथ भ्रष्ट साहित्यकार - नारी शोषण का चित्र - शोषित बाल समाज।

**अध्याय पाँच**

**मुक्तिबोध की कहानियों का विश्लेषण** 130

हिन्दी कहानी और मुक्तिबोध - प्रेमचंद युगीन कहानी और मुक्तिबोध - प्रेमचन्दोत्तर युग और मुक्तिबोध - नयी कहानी और मुक्तिबोध - मुक्तिबोध की कहानियों का कथ्य परिदृश्य - पूँजीवादी सत्ता का पर्दाफाश - मध्यवर्गीय जीवन के विविध आयाम - राजनीतिक संकट की कहानियाँ पारिवारिक कहानियों का नया रूप - मुक्तिबोध की कथा संवेदना - मुक्तिबोध की कहानियों का रचनाविधान।

**अध्याय छः**

**मुक्तिबोध की आलोचना** 161

हिन्दी आलोचना और मुक्तिबोध - साहित्य का समाज दर्शन मुक्तिबोध का रचनात्मक संघर्ष - रचना प्रक्रिया - ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान कामायनी एक पुनर्विचार - व्यवहारिक समीक्षा।

उपसंहार 181

सहायक ग्रन्थ सूची 185

अध्याय एक

# मुक्तिबोध का रचना-व्यक्तित्व

## भूमिका

हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध बहुमुखी प्रतिभा संपन्न, साहित्य के प्रति समर्पित एवं प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। अपने समय में वे आकंठ डूबे रहे। अमानवीय स्थितियों में षड्यंत्र के शिकार हो रहे मनुष्य एवं मानवीय स्थितियाँ मुक्तिबोध के साहित्य के केन्द्र में हैं। उनकी कविता, आलोचना, कहानी, उपन्यास, डायरी आदि में इसी मनुष्य को मुक्तिबोध ने सर्वाधिक प्रमुखता प्रदान की है। यह चिंता उनके साहित्य में अवसाद के रूप में अभिव्यंजित नहीं है। यह उनकी रचना में विशिष्ट पहचान के रूप में दर्ज है। उसमें हमारे यथार्थ का इतिहास ही सन्निविष्ट है। इस कारण से मुक्तिबोध अपने समय में ही नहीं आज भी प्रासंगिक हैं।

मुक्तिबोध ने सन् 1935 में लिखना आरंभ किया। स्वर्गीय मखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'कर्मवीर' में उनकी प्रारंभिक कविताएँ निकली थीं। उनकी कविताओं पर मखनलाल की राष्ट्रीयता का और महादेवी के रहस्यात्मक शैली तथा स्वर्गीय रमाशंकर शुक्ल की कविताएँ जो मखनलाल स्कूल से निकली हुई शाखा थी, का प्रभाव था। उनसे "बात सीधा न कहकर सूचित करने की पद्धति"[1] उन्होंने अपनाई। उनकी आरंभिक रचनाएँ छायावादी रोमानी संस्कारों से प्रेरित होकर भी उन पर यथार्थ की स्पष्ट छाप है। दॉस्तोयवस्की, फ्लॅबेयर और गोर्की के प्रति उनमें बड़ी श्रद्धा थी। मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र और दर्शन की समस्याओं में भी उन्हें रस मिलता था।[2]

जब मुक्तिबोध ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया तब छायावाद का अंतिम दौर चल रहा था और प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के उत्थान का समय था। सन् 1936 में

---

1 तारसप्तक स. अज्ञेय, पृ. 5
2 चाँद का मुंह टेढ़ा है मुक्तिबोध पृ. 12

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ साहित्य में प्रगतिशीलता की लहर उठने लगी। आरंभ से मुक्तिबोध में व्यवस्थित जीवन दर्शन अपनाने की प्यास थी। इस दौर में वे बर्गसॉ, इमर्सन जैसे भाववादी दार्शनिकों के प्रभाव में पड गये। इसी काल में वे प्रगतिशील लेखक संघ के सक्रिय सदस्य भी बने। मार्क्सवादी दर्शन के प्रभाव में पडने पर अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण''[1] उन्हें प्राप्त हुआ। इसी दौरान सन् 1943 में 'तारसप्तक' का प्रकाशन हुआ जिसमें मुक्तिबोध की कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ। तारसप्तकीय कविताओं के बहाने हिन्दी साहित्यिक जगत में एक क्षमता संपन्न कवि के रूप में मुक्तिबोध चिरप्रतिष्ठित हो गया।

कविता-लेखन के साथ-साथ मुक्तिबोध का कहानी लेखन भी चल रहा था। उनके शब्दों में ''साथ ही जिज्ञासा के विस्तार के कारण कथा की ओर मेरी प्रवृत्ति बढ गयी। इसका द्वंद्व मन में पहले ही से था। कहानी लेखन आरंभ करते ही मुझे अनुभव हुआ कि कथा-तत्व मेरे इतना ही समीप है जितना काव्य।''[2]

## मुक्तिबोध जीवन वृत्त

हिन्दी साहित्यिक जगत में आज सबसे अधिक आलोकित मुक्तिबोध का जन्म 13 नवंबर 1917 ई. को मध्यप्रदेश के रयौपुर (ग्वालियर) करब्दे में हुआ था। उनका पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध था और इस नामकरण से उनके परिवार की कथा का अद्‌भुत इतिहास जुडा हुआ है। खिलजी शासनकाल में ऋग्वेदी कुल्कर्णी ब्राह्मणों के किसी पूर्वज ने मुग्धबोध या मुक्तबोध नाम का कोई आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखा। कालांतर में उसी पर

---

1 तारसप्तक, सं अज्ञेय, पृ. 7

2 तारसप्तक, सं अज्ञेय, पृ 6

वंश का नाम चल पडा। अंग्रेज़ी शासन काल में गजानन के परदादा वसुदेव जलगाँव से नौकरी छोडकर ग्वालियर राज्य आये। उन्होंने अपने साथ स्वप्न दर्शन से प्राप्त एक शिवलिंग भी लाकर ग्वालियर में प्रतिष्ठित किया जिसकी आज तक परिवार में श्रद्धा से पूजा होती है। प्रायः वहाँ के स्थाणु मंदिर की ख्याति मुक्तिबोध मंदिर के रूप में हुई।

कवि के पिता माधवराव मुक्तिबोध ग्वालियर राज्य की पुलीस विभाग में अधिकारी थे। माँ पार्वती बाई पढी लिखी धर्मपारायण महिला थी। मुक्तिबोध के तीन भाई थे। छोटे भाई शरश्चन्द्र मराठी के प्रतिष्ठित कवि है। मुक्तिबोध की प्रारंभिक शिक्षा उज्जैन में हुई। उनका एक सहपाठी था शान्ताराम, जो गश्त की ड्यूटी पर तैनात हो गया था। गजानन उसी के साथ शहर की धुमक्कडी को निकल जाते थे। मित्र के साथ की इसी यात्रा ने उन्हें एक धुमक्कड प्रकृति का व्यक्ति बना दिया। उनकी कविताओं में जगह जगह पुराने कुएँ, बावडी में डूबी सीढियाँ, खण्डहर, घने बरगद, टूटे फूटे मंदिर आदि का जो जिक्र अनेक संदर्भ में आता है जो उनके निजी अनुभवों का है। बी. ए. पास होने पर पिता की इच्छा थी कि वे वकील बने, किन्तु उन्हें साहित्य सृजन में रुचि थी। एक ढहती परंपरा और आनेवाले युग के बीच खड़ा वह अपने चारों ओर देख रहा था। उपेक्षितों, दलितों के लिए उसकी सहानुभूति तेजी से बढ़ रही थी। जाति, कुल और सामाजिक वैषम्य के अवरोधों को एक तरफ ठेलकर पूरे परिवार और संबन्धियों का घोर विरोध झेलकर अपने घर की नौकरानी की बेटी शांता से उनका प्रेम-विवाह हुआ। परिवार वालों का विरोध शायद कभी भी कम नहीं हुआ। लेकिन माता-पिता के प्रति पुत्र और वधु के सेवाभाव में अणुमात्र कमी न आयी।

घर की विपन्नता के कारण सन 1938 में, इंदौर के होल्कर कालेज से बी. ए. करके वे उज्जैन के मॉडर्न स्कूल में अध्यापक हो गये। उस समय उज्जैन माधव कालेज का अध्यापक प्रभाकर माचवे से उनका परिचय नया नहीं था। उज्जैन में इन युवा

साहित्यकारों के बीच दार्शनिक और राजनीतिक बहस चलते थे। सन् 1940 में मुक्तिबोध शुजालपुर के शारदा शिक्षा सदन में अध्यापक हो गये। सदन के हेड्मास्टर (था) विष्णु नारायण जोशी जो बर्गसॉ के अध्येता थे। रोज़ शाम को उनका भाषण होता। इसी दौर में मुक्तिबोध इनसे प्रभावित हुए। सन् 1941 में नेमीचंद्र जैन वहाँ आये तो मुक्तिबोध में एक गुणात्मक परिवर्तन आ गया। नेमीजी बहुत अध्ययनशील थे। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के प्रभाव से वे मार्क्सवाद को अपना बौद्धिक आधार बना चुके थे। इन तीनों बुद्धिजीवियों के साथ माचवे भी साहित्यिक बहस में लंबी घंटे तक जुट जाते थे। ''धीरे धीरे शुजालपुर के बौद्धिक वातावरण पर मार्क्सवाद छा गया।''[1] कविता के भीतर इस मोड को लाना मुश्किल था। फिर भी मुक्तिबोध ने उसे कविता में लाने का सफल प्रयास किया।

सन् 1942 के आन्दोलन में शारदा शिक्षा सदन बंद हो गया, उसके उपरांत यह मित्र गण बिखर गये। डॉ. जोशी बंबई चले गये, नेमीजी और भारत भूषण कलकत्ते चले गये और मुक्तिबोध उज्जैन चले गये। ''शुजालपुर और उज्जैन ने सबसे मूल्यवान चीज़ जो हिन्दी को दी वह तारसप्तक है।''[2] तारसप्तक में मुक्तिबोध का मौलिक और प्रौढ योग था।

उज्जैन में मुक्तिबोध ने 'मध्यभारत प्रगतिशील लेखक संघ' की बुनियाद डाली। इसकी मीटिंग में रामविलास शर्मा, अमृतराय जैसे बडे साहित्यकारों को बुलाते थे। सन् 1944 में राहुलजी की अध्यक्षता में 'फासिस्ट विरोधी लेखक कॉफ्रेंस' का आयोजन मुक्तिबोध ने किया। सन् 1945 में मुक्तिबोध बनारस गये और त्रिलोचन शास्त्री के साथ 'हंस' के संपादन में शामिल हुए। सन् 1946-47 में जबलपुर के हितकारिणी हाइस्कूल

---

1 चॉद का मुँह टेढा है मुक्तिबोध, पृ 14
वही पृ. 15

में अध्यापक हो गये। इस दौर में दैनिक 'जयहिंद' में भी वे कुछ समय काम करते थे। इसके बाद 'समता' द्वैमासिक में प्रमुख योग दिया। लेकिन अर्थाभाव के कारण यह द्वैमासिक बंद हो गया। मुक्तिबोध जबलपुर से नागपुर गये। अपनी कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताएँ इस दौर की देन थीं। आर्थिक दृष्टि से ये सबसे जटिल साल भी थे। ''परिवार में सदस्य भी बढ रहे थे, बाज़ार में महंगाई भी, और नौकरी में टोटा भी।''[1] वे कुछ दिनों नागपुर रेडियो में समाचार विभाग में संपादक थे। नागपुर में उन दिनों वे कृष्णानंद सोख्ता द्वारा संपादित 'नया खून' जो निर्भीकता से मज़दूरों का पक्ष लेता था, में मुक्तिबोध लिखने लगे। इस दौर में 'कामायनी एक पुनर्विचार' प्रकाशित हुई। एमस्प्रेस मिल के मज़दूरों पर गोली चलाने का दृश्य एक रिपोर्टर की हैसियत मुक्तिबोध ने देखा। उन्होंने सिरों का फूटना और खून का बहना अपनी आँखों से देखा। उनके नागपुर जीवन के बहुत सारे संदर्भ अपनी सशक्त कविता 'अंधेरे में' के अंतस्तल में समेटे हुए हैं।

मित्रों के परामर्श से उन्होंने सन् 1954 में एम. ए. किया। राजनॉद गाँव के दिग्विजय कालेज में उन्हें नौकरी मिल गयी और उनकी परिस्थिति में किंचित सुधार हुआ। 'ब्रझराक्षस' 'ओराँग-उटाँग' 'अंधेरे में' आदि सफल कविताएँ इस दौर की सृष्टि थी। ''दिसंबर सन् 1957 में 'इलाहाबाद लेखक सम्मेलन' में मुक्तिबोध आये थे। नयी पीढी के सभी कवियों और काव्य-प्रेमियों को उन्होंने न केवल अपने सहज स्नेहिल व्यक्तित्व से, बल्कि अपनी कविताओं की शक्ति, ओज, कल्पना प्रसार और अर्थ वैभव से अभिभूत कर दिया था, और मोह लिया था।''[2]

उनके जीवन की स्मरणीय घटनाओं में विशेष उल्लेखनीय है 'भारत इतिहास और संस्कृति' नामक पुस्तक का प्रकाशन और उसके परिणाम। यह पुस्तक मध्यप्रदेश सरकार

---

1 चाँद का मुँह टेढा है मुक्तिबोध. पृ. 17
चाँद का मुँह टेढा है मुक्तिबोध. पृ 18

के शिक्षा विभाग द्वारा पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत हुई और उसी सरकार द्वारा यह पुस्तक लोक सुरक्षा कानून के अधीन अवैध भी घोषित हुई। मुक्तिबोध केलिए यह विलक्षण अनुभव था। 1964 फरवरी में उनका पक्षाघात हुआ। मैथिलीशरण, काका कलेलकर, मामा, वरेरकर, जैनेन्द्र कुमार, आ. रा. देशपाण्डे, अनिल, बच्चन, प्रभाकर माचवे, भरतभूषण, नेमीचन्द्र जैन, अशोक वाजपेयी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सुरेश अवस्थी, कमलेश्वर, अजित कुमार, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, इत्यादि लेखकों के अनुरोध से मुक्तिबोध की चिकित्सा शासकीय स्तर पर की गयी। साहित्यिकों ने भाषा, प्रांत, जाति, आय आदि भेदों को भूलकर मुक्तिबोध की अंतिम घडी में उनकी सहायता की। भारत के सबसे बडे चिकित्सा-संस्थान के डाक्टरों ने उनका इलाज किया। सन् 1964 आगस्त में इन महात्मा की मृत्यु हुई।

## मुक्तिबोध के रचनाकाल का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

प्रत्येक साहित्यकार का साहित्य अपना समय की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों की देन है। इसलिए सभी युगों में समसामयिक वास्तविकताओं का प्रतिफलन साहित्य में होता आया है। मुक्तिबोध का साहित्य अपने समय की कठोरताओं, गंभीरताओं और अमानवीय स्थितियों को अभिव्यंजित करता रहा है। इसलिए मुक्तिबोध के साहित्य के मर्म को पकडने केलिए तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों की जानकारी अनिवार्य है।

अंग्रेज़ों के आगमन ने भारत की सामाजिक व्यवस्था को, जो सासंकृतिक मूल्यों पर अधिष्ठित थी, किसानी एवं ग्रामीण संस्कृति को प्रमुखता देनेवाली थी, उलट दिया।

मुनाफा कमाना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। इसकेलिए उन्होंने ज़मींदारों को नियुक्त करके कृषकों से कर वसूल करना शुरू किया। ज़मींदारों ने अपना लाभ भी लक्ष्य कर उनसे ज्यादा कर वसूली की। ''नये-नये करों के बोझ से कृषक वर्ग दबता गया।''[1] ऋण चुकाने की असमर्थता के परिणाम स्वरूप किसान खेतीहर मज़दूर बन गये। भारतीय कृषक वर्ग जो पहले समाज का मालिक था, शासकों तथा ज़मींदारों के शोषण के शिकार होते गये। इस प्रकार भारतीय आर्थिक व्यवस्था टूट गयी। परंपरागत वर्ण व्यवस्था के स्थान पर नवीन भारतीय समाज में उच्च, मध्य, निम्न वर्ग का उदय हुआ। उच्चवर्गीय पूँजीपतियों का उदय अंग्रेज़ी शासन काल में हुआ था। साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में मग्न स्वतंत्रता-संग्राम में भी इन वर्गों ने अपने हितों के आधार पर काम किया। निम्न वर्ग के अंतर्गत आनेवाले किसान मज़दूर व अन्य व्यक्तियों ने अपने वर्गीय हितों की अपेक्षा देश हित को अधिक महत्वपूर्ण समझा। लेकिन पूँजीपतियों केलिए अपने वैयक्तिक स्वार्थ ही प्रमुख था। मध्यवर्ग ने उपर्योक्त दोनों वर्गों के बीच की स्थिति में कार्य किया।

तत्कालीन समाज की एक कठोर समस्या सांप्रदायिक विद्वेष का फैलाव है जो अंग्रेज़ों द्वारा अपनायी गयी कूटनीति के तहत अधिक विकसित हुआ। भारत को कमज़ोर करने केलिए ही अंग्रेज़ सरकार ने यह नीति अपनायी थी। इसके फलस्वरूप सांप्रदायिकता का बीज इस मिट्टी में अंकुरित होने लगा।

नवीन भारतीय समाज पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव भी विशेष उल्लेखनीय है। ''जो जाति आर्थिक रूप से संपन्न थी वह शीघ्र आधुनिक सभ्यता से प्रभावित हुई।''[2] पश्चिमीकरण से पुराने ढाँचे में परिवर्तन और राष्ट्रीय चेतना में वृद्धि के साथ सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक श्रेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। पश्चिमीकृत बुद्धिजीवी वर्ग का उदय

---

गजानन माधव मुक्तिबोध जीवन और काव्य महेष भटनागर, पृ 36

मुक्तिबोध युवचेतना और अभिव्यक्ति आलोक गुप्ता, पृ 14

भी उस काल में हुआ। उन पर उस संस्कृति के साथ भारतीय संस्कृति का भी प्रभाव पडा। परिणामतः ''राष्ट्रीय चेतना की जागृति हुई। साथ ही साथ प्रादेशिकता, सांप्रदायिकता और जातिवाद का भी उदय हुआ। इससे उदयोन्मुख भारत के लिए गंभीर समस्यायें उत्पन्न हुई।''[1]

अंतराष्ट्रीय स्तर पर रूसी क्रांति के बाद मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ रहा था। परिणामतः साम्राज्यवाद और पूँजीवाद, जो पहले अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विकासशील था, दोनों का ह्रास होने लगा था। विश्व भर में पूँजीवादी तथा मार्क्सवादी विचारधाराओं के बीच शीतयुद्ध चल रहा था। दोनों विचारधारायें विश्व भर में अपने प्रभाव फैलाने में प्रयत्नरत थीं। रूस के नेतृत्व में मार्क्सवाद विश्व भर के देशों को सामाजीकरण करने का प्रयास करते रहे। अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीवाद वैयक्तीकरण को प्रयास में लगा था। रूसी क्रांति में समाजवादी मज़दूर क्रांति की सफलता, तदुपरांत सामाजीकरण से राष्ट्र की शीघ्र प्रगति से रूस नये समाज का प्रतीक बन गया। साम्राज्यत्व की अमानवीयता से कष्टपूर्ण जीवन बितानेवाले देशों में जनता ने अपने देश की राजनीतिक वातावरण को वामपंथ की ओर मोडने का प्रयास किया। समाजवाद व मार्क्सवाद के प्रति उनकी आस्था बढ गई। यह पूँजीपतियों केलिए खतरे की घंटी थी जिसने पहले सर्वहारा को अपने हितों केलिए इस्तेमाल किया था। अब सर्वहारा का उन्नमन उनकेलिए खतरे की बात थी। भारतीय जनता भी मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट हुई। भारत के साहित्यकारों में भी इस विचारधारा का प्रभाव बढ़ गया। हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं जो पूँजीवादी आत्मग्रस्तता से समाज को बचाकर समाजवादी आत्मविस्तार की ओर अग्रसर होने में संघर्षरत थे।

---

1 आधुनिक भारत मे सामाजिक परिवर्तन, एम एन श्रीनिवास, पृ. 73

मुक्तिबोध का हिन्दी साहित्य में आगमन उपर्योक्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक वातावरण में हुआ। हिन्दी साहित्य में यह युग छायावाद का ह्रासकाल था। राजनीतिक स्तर पर यह घटनाप्रधान काल था। आजादी के लिए आँदोलन उसकी पराकाष्ठा में पहूँचता था। गाँधीजी के नेतृत्व में सभी स्तर के लोग कंधे से कंधे मिलाकर आज़ादी केलिए लड़ रहे थे। उस युग में राजनीतिक नेता जनता के साथ थे। जनता के हितों की पूर्ति तथा राष्ट्रमंगल उनका लक्ष्य था। भारतीय जनसाधारण के मन में एक स्वप्न था - आज़ादी के बाद शोषण रहित, समानता पर आधारित समाज-व्यवस्था। आज़ादी के बाद यह स्वप्न इसलिए टूट गया कि उसके साथ जो समग्र परिवर्तन अपेक्षित था वह न हो पाया। आज़ाद तो हम हुए। देशी नेता शासन के केन्द्र में आ भी गयी। लेकिन एक पारदर्शी व्यवस्था कायम न हो सकी।

विदेशी शासन से आर्थिक क्षेत्र भी बिगड गया। दूसरा विश्वयुद्ध तथा बंगाल के अकाल से जनता की ज़िन्दगी बिलकुल मुज़ीबत में पड़ गयी। राजनीतिक अराजकता एवं आर्थिक वैषम्य से समाज मुख्यतः तीन तबकों में विभाजित हो गये। एक तबका खाते पीते उच्च वर्ग का है तो दूसरा अवसरवादी मध्यवर्ग का, तीसरा निम्न फटेहालों का। ''निरंतर विद्रोह, संघर्ष एवं परिस्थितियों के विषम आघात ने कल्पना के सौन्दर्य लोक को छिन्न भिन्न कर दिया था और उन्हें जीवन को निकट से देखने उसके वैषम्य को समझने केलिए बाध्य कर दिया था।''[1]

मुक्तिबोध का जीवन काल हमारे देश में तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई स्मरणीय ऐतिहासिक घटनाओं का काल था। वर्तमान व्यवस्था को बदलने का तथा एक व्यवस्थित जीवन दर्शन अपनाने की चाह मुक्तिबोध में थी। उन्होंने इस प्रयास में मार्क्सवादी दर्शन

---

1 गजानन माधव मुक्तिबोध : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : जनक शर्मा, पृ. 104

को अपनाया। उनका मार्क्सवाद जड़ और निष्क्रिय न होकर विकासशील और सक्रिय है। व्यवस्था बदलाव की पुकार मार्क्सवादी आदर्शों से जुडकर मुक्तिबोध की तमाम साहित्यिक कृतियों में मुखरित है। वे अपनी साहित्यिक कृतियों में जड़ व्यवस्था का विरोध करते हैं। क्योंकि मुक्तिबोध देश की सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक गतिविधियों को सही ढंग से समझ और महसूस करनेवाले रचनाकार है।

## साहित्यिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में मुक्तिबोध की प्रतिभा का परिचय स्फुरित है। उनकी लेखनी के महत्व को समझने केलिए उन सभी विधाओं की समसामयिक गतिशीलता पर विचार करना अनिवार्य है। मुक्तिबोध का साहित्यिक जीवन छायावाद के पतन काल से लेकर नयी कविता तक का काल था। साहित्य का यह युग विभिन्न आंदोलनों तथा विचारधाराओं का युग था। इस युग में कई महान विद्वान साहित्यिक क्षेत्र में अवतारित हुए।

मुक्तिबोध का साहित्य क्षेत्र में आगमन छायावाद के ह्रास काल में था। उस युग में साम्राज्यत्व के अधीन थके हुए भारतीय जनसाधारण स्वभावतः साम्यवाद की ओर आकृष्ट हुआ। प्रगतिवाद मार्क्सवादी जीवन दर्शन पर आधारित काव्यान्दोलन है मार्क्सीय विचारों के अनुरूप उच्च, मध्य, निम्न वर्गों के बीच की रवाई प्रगतिवादियों केलिए चिंता विषय है। मार्क्सवादी सिद्धांत का गहरा प्रभाव प्रगतिवाद पर था। मार्क्सवादी दर्शन की तरह क्रांति और संघर्ष प्रगतिवाद का भी केंद्रीय विषय है। प्रगतिवादी आन्दोलन के सामाजिक, मानवीय संवेदना मुक्तिबोध की कविताओं में भी मुखरित है।

प्रयोगवाद भी एक प्रमुख छायावादोत्तर काव्यान्दोलन है। वैयक्तिकता पर आधारित यह आंदोलन प्रगतिवाद के समानांतर चला था। यदि छायावाद में भावात्मक वैयक्तिकता है तो प्रयोगवाद में बौद्धिक वैयक्तिकता का प्राधान्य है। प्रयोग पर उनका ज़ोर था। तारसप्तक के कवि विभिन्न विचारधाराओं के होने पर भी उनमें सहयोग की भावना मौजूद थी।

जब मुक्तिबोध हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित हुए तब प्रेमचंद, प्रसाद जैसे महात्माओं तथा उनके अनुयायियों ने हिन्दी कथा साहित्य को सर्वश्रेष्ट विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया था। उन्होंने पहली बार हिन्दी कथा साहित्य को ऐयाशी, जासूसी इन्द्रजाल से निकाल कर समाज से जोडने का कार्य किया। मनुष्य तथा उसके परिवेश को उन्होंने महत्व प्रदान किया। कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद ने समाज की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कहानियाँ लिखीं। विषय की व्यापकता, चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता प्रवाहपूर्ण शैली आदि विशेषताएँ प्रेमचंद की कहानी को अद्वितीय बनने में सहायक रहीं।

प्रेमचंदोत्तर युग में कहानी साहित्य में अनेक प्रवृत्तियाँ व धारायें परिलक्षित होती हैं। सर्वप्रथम व्यक्ति को केन्द्रबिंदु मानकर उसकी अंतःवृत्तियों का मनोविश्लेषणात्मक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया। इस धारा के कहानीकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचंद जोशी प्रमुख हैं। दूसरी ओर बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में अंतराष्ट्रीय राजनीतिक प्रभाव के परिणाम स्वरूप प्रगतिवादी समाजवादी कहानियों की रचना शुरू हुई। इस धारा के कहानीकारों में अमृतराय, राहुल, और रांगेय राघव उल्लेखनीय है। तीसरी ओर किसी वादविशेष से मुक्त होकर यथार्थपरक कहानी लिखनेवालों में उपेन्द्रनाथ अश्क भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतशरण उपाध्याय आदि ने ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परंपरा में लिखना शुरू किया। हास्य व्यंग्यात्मक धारा के अंतर्गत लिखनेवालों में उल्लेखनीय है हरिशंकर

परसाई, जी. वी. श्रीवास्तव आदि। श्रीराम शर्मा, देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रभाकर माचवे आदि साहसिक परंपरा के अंतर्गत आनेवाले कहानीकार है। इस तरह प्रेमचंदोत्तर युग में नयी कहानी की शुरूआत से पहले हिन्दी कहानी साहित्य में विभिन्न धाराओं का एक सिलसिला चल रहा था।

मुक्तिबोध की सर्जनात्मक प्रतिभा की मुख्य अभिव्यक्ति कविता में ही हुई है। मगर उनकी रुचि कथा-लेखन में भी शुरू से उतनी ही गहरी थी। और वे लगातार जीवन अनुभव को कथा-मूलक बिंबों में व्यक्त करते रहे। इसलिए मुक्तिबोध की संकलित कहानियों का काल भी कविताओं की भांति 1936 से 1964 तक फैला हुआ है। मुक्तिबोध का कथा लेखन प्रसाद, प्रेमचंद जैसे महान प्रतिभाओं के युग से शुरू होकर नयी कहानी के युग तक रहा। लेकिन मुक्तिबोध की कथाकृतियों की विशेषता यह है कि उनकी कहानियों को तत्कालीन कथा आंदोलन से जोडकर देखना असंभव है।

मुक्तिबोध का जीवन काल आलोचना साहित्य का भी विकास काल था। जब साहित्यिक क्षेत्र में मुक्तिबोध अवतारित हुए तब आलोचना क्षेत्र में समीक्षा सम्राट शुक्लजी का युग था। शुक्लजी ने हिन्दी आलोचना साहित्य को एक महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक आलोचना को पर्याप्त मात्रा में विकसित किया। उनके द्वारा हिन्दी आलोचना के संपूर्ण अंगों का अपेक्षित विकास हुआ। शुक्लजी स्वतंत्र आलोचक थे। वे किसी वाद के घेरे में आनेवाले नहीं थे। उस युग में स्वयं छायावादी कवि अपनी काव्य की स्थापना केलिए स्वयं आलोचक बन गये। प्रसाद, पंत, महादेवी एवं निराला ने अपनी कविताओं की भूमिका तथा आलोचनात्मक कृतियों द्वारा अपने साहित्यसंबंधी विचारों को अभिव्यक्त किया है। नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नागेन्द्र जैसे महान आलोचक भी इस युग में अवतीर्ण हुए।

मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को सर्वस्व मानकर उस के आधार पर आलोचना को विकसित करनेवाले प्रगतिवादी सामीक्षकों के एक दल का आविर्भाव उस युग में हुआ। मार्क्सवादी समीक्षकों में रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्रगुप्त, अमृतराय, नामवर सिंह आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अलोचना साहित्य के इस दौर में हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का नाम लेना ज़रूरी है। शुक्लजी की तरह वे भी बिलकुल स्वतंत्र आलोचक है। उन्होंने अपनी आलोचनाओं में भारतीय संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठा करने का सफल प्रयास किया है। आलोचना क्षेत्र में उनकी ख्याति ऐतिहासिक या सांस्कृतिक मानवतावादी आलोचक के रूप में है।

मुक्तिबोध ने इस काल में नये समीक्षक के रूप में अवतारित होकर समीक्षा के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकारों को समृद्ध बनाया। उन्होंने मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति को अपनाया और हिन्दी समीक्षा को एक नयी दिशा प्रदान की।

संक्षेप में यह कह सकता है कि मुक्तिबोध का युग साहित्यिक गतिशीलता का युग रहा। साहित्य के सभी अंगों का विकास समान गति से इस दौर में हुआ। देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में यह कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का युग भी था। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध बनाया।

## मुक्तिबोध की सामाजिक प्रतिक्रियायें

समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों के संबंध में अपनी प्रतिक्रियाएँ मुक्तिबोध ने अपनी साहित्यिक रचनाओं से व्यक्त किया है। पूँजीवादी समाज में जनसाधारण शोषण का शिकार है। यहाँ हर चीज़ खरीदी और बेची जाती है।

बुद्धिजीवी वर्ग बुद्धि बेचता है। इस समाज में स्त्री बिकती है, श्रम बिकता है अंतरात्मा भी यहाँ बिकाऊ माल है। इस पूँजीवादी समाज में व्यक्तिस्वातंत्र्य अगर किसी को है तो वह धनिक वर्ग को है। क्योंकि धनिक वर्ग दूसरों की स्वतंत्रता खरीदकर अपनी स्वतंत्रता बढाता है। ''व्यक्ति को खरीदने और बेचने की, खरीद जाने और बेचे जाने की, दूसरों के स्वतंत्रता को खरीदने की या अपनी स्वतंत्रता बेचने की आज़ादी की मज़बूरी है।''[1] मुक्तिबोध की राय में ''जो व्यक्ति स्वातंत्र्य, समाजवाद और जनतंत्र के समन्वय में बाधक हो, या इन दोनों में से किसी एक कार्य उत्सर्ग करने केलिए उत्सुक हो, उस व्यक्ति स्वातंत्र्य का पूरा समाज सार्वजनिक रूप से निंदित और तिरस्कृत करे।''[2]

पूँजीवादी समाज में मध्यवर्ग का व्यक्ति अपनी श्रेणी से ऊपरी श्रेणी तक पहुँचने का प्रयास करता है। मुक्तिबोध कहते हैं कि तुम अपनी श्रेणी को सामान्य जनता के उद्धार लक्ष्यों और उद्देश्यों के समीप लाओ। लेकिन वह तुम से नहीं हो सकता। अपनी कविताओं में पूँजीवादी समाज के विरुद्ध मुक्तिबोध लिखते हैं, 'अंधेरे में' कविता में मुक्तिबोध की पंक्तियाँ -

''कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,''[3]

इस तरह मुक्तिबोध की सामाजिक प्रतिक्रियाएँ पूँजीवादी समाज की विद्रूपताओं के विरुद्ध थीं।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध. पृ 221
वही पृ 254
वही दो मुक्तिबोध पृ 350-51

राजनीति श्रेत्र में स्वार्थ नेतागण वोट केलिए आम जनता के पास जाते हैं और जीतने के बाद ''श्यामल जनसमुदाय को बडे ठाठ से भूल जाया करती थी।''[1] राजनीतिक नेता अपनी निजी तरक्की केलिए प्रयत्नरत थे। समाज में अपनी बढत केलिए वे मौकापरस्त बन गये हैं। भारतीय राजनीतिक नेताओं का सच्चा चित्र मुक्तिबोध व्यक्त करते हैं। ''वास्तविकता यह है कि अलग अलग लोग अलग अलग ढंग से पूँछ हिलाते हैं। मेरा भी पूँछ हिलाने का अपना तरीका है। मैं अपने पंजे मालिक की गोद में रख दूँगा और फिर दाँत निकालकर मालिक के मुँह की तरफ देखते हुए पूँछ हिलाऊँगा। दूसरे कुत्ते दर्वाजे पर खडे होकर पूँछ हिलाते हैं। कुछ कुत्ते पास आने के लगन बताते हुए बीच बीच में भौंकते हैं, गुर्राते हैं और पूँछ हिलाते रहते हैं।''[2]

अंतराष्ट्रीय राजनीति पर मुक्तिबोध को गहरी रुचि थी। मुक्तिबोध मुख्यतः अपनी राजनीतिक टिप्पणियों में अंतराष्ट्रीय राजनीति पर अपनी प्रितिक्रीयाएँ व्यक्त की है। 'जनीवा कान्फ्रेंस के नेपथ्य में मृत्यु संगीत' शीर्षक टिप्पणी में मुक्तिबोध ने फ्रांस, ब्रिटन-अमेरिका की साम्राज्यवादी धुरी के विरुद्ध रूस-चीन की समाजवादी धुरी के दृष्टिकोण के फर्क पर विचार किया है। ''रूस और चीन अच्छी तरह जानते हैं कि हिंदचीन का युद्ध साधारण युद्ध नहीं, वह सशक्त जनक्रांति है, जिसका उद्देश्य है जनता की पूर्ण स्वाधीनता और साथ ही विदेशी सरकार के देशी गुलामी से मुक्ति। यह क्रांतिपूर्ण होनी चाहिए।''[3]

'मिश्र के विरुद्ध इतना रोष क्यों?' शीर्षक टिप्पणी में मुक्तिबोध ने साम्राज्यवादी देशों के राजनीतिक षड्यंत्र का उल्लेख किया। इसमें उन्होंने लिखा है कि ''आज तक जिन छोटे और बडे राष्ट्रों ने दूसरे विश्वयुद्ध के उपरांत सिर उठाया, उन्हें मार खानी पडी। ईरान में ब्रिटीश एंग्लो-ईरानियन तेल कंपनी के राष्ट्रीयकरण की शर्तों के बारे में

---

1 वही -दो मुक्तिबोध, पृ 218
2 वही तीन वही पृ. 221-222
वही छः पृ. 49

ईरान के प्रधान मंत्री डॉ. मुसद्दिक और ब्रिटन में जो तनातनी चली, उसका परिणाम एक बडा भारी अंतर्राष्ट्रीय कुचक्र था, जिसमें डॉ. मुसद्दिक की सरकार पिस गई और उसके समर्थक गोली से उडा दिये गये।''[1]

ब्रिटीश सम्राज्यवाद पर इशारे देते हुए मुक्तिबोध कहते हैं कि ''यह लन्दन ही है भारत के अमरिका विरोध को धीरे धीरे उकसाने के स्थिति के प्रति संतुष्ट रहा। यह लन्दन ही है जो आज भी दक्षिण अमेरिका में ऐसे तत्वों को सहायता दे रहा है, जो अमेरीकी चंगुल से निकलना चाहते हैं।''[2] मुक्तिबोध के अनुसार साम्राज्यवादी देशों की जनता और साहित्यकार साम्राज्यवाद के विरुद्ध पडते हैं। अमेरिकी लोखकों ने भी इसी तरह की परिस्थितियों का सामना किया है। यह कोई नई परिस्थिति नहीं है।[3]

मुक्तिबोध मात्र भारतीय राजनीति की साहित्यकार ही नहीं बल्कि विश्वराजनीति के लेखक भी हैं। वे एशिया, आफ्रिका और लैटिन अमेरिका के पिछडे हुए और नवस्वतंत्र देशों के लिए आवाज उठानेवाले साहित्यकार हैं। उनकी गहरी मानवीय संवेदना और व्यापक दृष्टि ने ही राजनीति के श्रेत्र में इतना गहन विचार अभिव्यक्त करने में उन्हें सक्षम बनाया है।

## साहित्यिक मान्यताएँ

मुक्तिबोध के साहित्यिक विचार हिन्दी केलिए अपूर्व उपलब्धि है। मुक्तिबोध अपने लेखों में एकाधिक बार कहा है कि वह नई कविता के प्रगतिशील धारा के प्रतिनिधि हैं। नयी कविता का मुक्तिबोध के लिए अर्थ था तारसप्तक से शुरू होनेवाली कविता। इस

---

1 मुक्तिबोध रचनावली छः मुक्तिबोध पृ 71
वही पृ 175
वही तीन पृ 223

कविता को बाद में प्रयोगवादी कविता कहा गया। 'वस्तु और रूप तीन' शीर्षक लेख में मुक्तिबोध ने नयी कविता की दो अवस्थाएँ बतलाई है - स्वाधीनता पूर्व की नयी कविता और स्वाधीनता काल की नयी कविता। इसमें पहली नयी कविता प्रगतिशील थी दूसरी नयी कविता व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी।

मुक्तिबोध प्रगतिवादी लीक छोडकर उसे और प्रभावशाली बनाने केलिए, उनमें निहित संकीर्णता को दूर करने केलिए प्रयत्नशील थे। इसी लक्ष्य से उन्होने प्रगतिवाद की आलोचना कई स्थलों पर की है। उनके अनुसार वास्तविक प्रगतिशील मनुष्य प्रगतिशील कविता के मानव से भी कमज़ोर, शोषित, विविधपक्षीय, सुझाव रखनेवाला और उलझाव भरा मनुष्य है। प्रगतिशील कविता में उनके जीवन के सभी पक्ष नहीं आये हैं। मुक्तिबोध के अनुसार ''पूर्ण मनुष्य के दर्शन, मानव-जीवन के सभी पक्षों के दर्शन होना चाहिए।''[1] प्रगतिवाद से उनका विरोध रचना से लेकर था वैचारिकता से नहीं।

## मुक्तिबोध की रचनाएँ

असाधारण प्रतिभा संपन्न साहित्यकार मुक्तिबोध छायावादोत्तर हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ स्तंभ एवं समकालीन हिन्दी साहित्य के सफल हस्ताक्षर हैं। उन्होंने नयी कविता की प्रगतिशील धारा में अवतरित होकर हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा दी। वे हिन्दी साहित्य में अपनी प्रतिभा से काव्य साहित्य को आलोकित करनेवाले अपनी बौद्धिकता से आलोचना साहित्य को जागृति देनेवाले तथा कथा साहित्य को पल्लवित करनेवाले साहित्यकार के अतिरिक्त सफल अध्यापक एवं संपादक भी हैं।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पॉच मुक्तिबोध पृ 115

उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों में जनसंगठन और सामाजिकता के द्वारा व्यवस्था की अमानवीयता के खिलाफ जागरण करने का संदेश जनता को प्रदान किया। मुक्तिबोध का साहित्यिक क्षेत्र में आगमन छायावाद के पतनकाल में हुआ। उनकी साहित्यिक सार्थकता समझने केलिए उनके साहित्यिक कृतियों पर विचार करना उचित है। उनकी साहित्यिक कृतियाँ निम्नांकित हैं। -

चाँद का मुख टेढा है (1964)
भूरी भूरी खाक धूल (1980) — काव्य संकलन

काठ का सपना (1967)
सतह से उठता आदमी (1971) — कहानी संकलन

कामायनी एक पुनर्विचार (1950)
नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध (1964)
नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (1971)
भारत इतिहास और संस्कृति — आलोचनात्मक कृतियाँ

एक साहित्यिक की डायरी (1964) - डायरी

मुक्तिबोध मूलतः कवि है। उनकी सर्जनात्मक ऊर्जा और मौलिकता का पूरा प्रकाश कविताओं में ही हुआ है। उन्होंने अपनी मुख्य साहित्यिक विधा के रूप में कविता को चुना। उनकी कविताएँ आदि से अंत तक क्रमशः गतिशील है। आरंभिक दौर की कविताओं में छायावादी रुमानियत की छाया है। आगे बढकर उन्होंन् बर्गसाँ, इर्सर्सन जैसे भाववादी दार्शनिकों के दर्शन से प्रभावित कविताएँ लिखी है। आगे चलकर उनकी कविताओं में मार्क्सवाद छाया हुआ है। इस प्रकार उनकी कविताएँ वैयक्तिकता से आरंभ होकर सामाजिकता की ओर जानेवाली कविताएँ हैं। 'तारसप्तक' में मुक्तिबोध के 16

कविताएँ छपी है। इनमें मूलतः भाववादी दर्शन से प्रभावित कविताएँ हैं। उनका पहला काव्य संकलन 'चाँद का मुँह टेढा है' उनकी मृत्यु के बाद सन् 1964 में प्रकाशित हुआ। इनमें मुख्य रूप से अंतिम दौर की कविताएँ है। दूसरा संकलन 'भूरी भूरी खाक धूल' 1980 में प्रकाशित 47 कविताओं का संकलन है। मुक्तिबोध की तमाम काव्य.प्रवृत्तियाँ इन दोनों संकलनों में पायी जाती हैं। व्यवस्था विरोध तथा व्यवस्था के विरुद्ध कुछ करने की संकल्पना का स्वप्न उनकी कविताओं का प्रतिपाद्य विषय है।

युग बोध तथा युगीन समस्याओं का साक्षात्कार मुक्तिबोध की कथासाहित्यों 'काठ का सपना' 'सतह से उठता आदमी' का प्रतिपाद्य विषय है। ये काव्योत्तर रचनाएँ उनकी बौद्धिक स्थितियों का प्रामाणिक आधार हैं। कविता की भांति बाहर से भीतर और भीतर से बाहर की ओर अतिक्रमण करने की कोशिश इनमें भी निरंतर दिखाई पडती है।

मुक्तिबोध की आलोचनात्मक कृतियाँ उन्हें एक अत्यंत जागरूक, अपने रचना कर्म के प्रति बेहद सजग संवेदनशील और गहरी अंतर्दृष्टि वाले रचनाकार के रूप में परिचय कराती हैं। 'कामायनी एक पुनर्विचार' में कामायनी को नये परिप्रेक्ष्य में परखने का प्रयास किया गया है। उन्होंने कामायनी को आधुनिक पूँजीवाद की आधारभूमि पर आधारित एक कथा प्रधान महाकाव्य माना हैं। 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' में 13 निबंध संकलित हैं। इनमें उन्होंने नयी कविता पर नज़र रखते हुए अपने काव्य संबंधी मान्यताओं को अभिव्यक्ति दी है। 'नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' पंद्रह निबंधों का संग्रह है। इन निबंधों में अपनी परिचित साहित्यिक मान्यताओं के साथ साथ कला के कतिपय प्रतिमानों पर विशेष ध्यान दिया है। आत्माभिव्यक्ति के साथ कला की सृजनात्मक एवं रूपगत अभिव्यक्ति तथा समकालीन कविता पर उनके विचार मौलिक, सशक्त एवं प्रभावात्मक है।

'एक साहित्यिक की डायरी' को अनेक गद्य विधाओं तथा लेखक की वैज्ञानिक दृष्टि समन्वित बौद्धिकता एवं मानवीय संवेदना का समन्वय बताया जा सकता है। इसमें उन्होने अपने सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में साहित्य के संदर्भ में उत्पन्न संशयों एवं सवालों को सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषण कर पाठकों को समझाने का सफल प्रयास किया है। इस डायरी द्वारा लेखक ने साहित्य की समकालीन संदर्भ में चिंतन मनन की भूमिका तैयार कर दी।

श्री गिरिधर राठी के शब्दों में ''कविता, कहानी, आलोचना, पत्र, निबंध, डायरी जिस किसी विधा को मुक्तिबोध ने छुआ, अपनी छाप छोडी।''[1]

संक्षेप में यह कह सकता है मुक्तिबोध ने साहित्य के जिस किसी क्षेत्र को स्पर्श किया उसे समृद्ध भी बनाया। उनका साहित्यिक जीवन एक प्रतिबद्ध एवं समर्पित कलाकार का जीवन था। उन्होंने साहित्य को सही दिशा की ओर ले चलने का कार्य भी अपनी कृतियों द्वारा दिया। वे भविष्य के प्रति एक दीर्घदृष्टि रखनेवाले साहित्यकार थे। इसलिए उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी

## मुक्तिबोध का साहित्यिक विकल्प

साहित्य संवेदनशील मनुष्य के विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। एक प्रतिभासंपन्न साहित्यकार की अपने साहित्य के संबंध में स्पष्ट धारणा होती है। मुक्तिबोध साहित्य के संबंध में स्पष्ट धारणा रखनेवाले साहित्यकार थे। वे मूलतः विचारक न होकर कवि है। अपने काव्यजीवन की यात्रा के दौरान जो चिन्तन उभर आया जिसे उन्होंने

---

1 मुक्तिबोध की आत्मकथा विष्णुचन्द्र शर्मा आवरण पृष्ठ

अपने आलोच्य कृतियों द्वारा अभिव्यक्त किया। उनका स्पष्ट मत है कि ''जनता के मानसिक परिष्कार उसके आदर्श मनोरंजन से लगातार क्रांति पथ पर मोडने वाला साहित्य, जनता का जीवन चित्रण करनेवाला साहित्य, मन को मानवीय और जन को जन जन करनेवाला साहित्य, शोषण और सत्ता को चूर करनेवाले स्वातंत्र्य और मुक्ति के गीतों वाला साहित्य, साहित्यक, प्राकृतिक शोभा और स्नेह के सुकुमार दृश्यों वाला साहित्य सभी प्रकार का साहित्य सम्मिलित है - बशर्ते कि वह मन को मानवीय और जन को जन-जन बना सके और जनता को मुक्ति पथ पर अग्रसर कर सके।''[1] वे साहित्यकारों को कोई अलग या विशिष्ट वर्ग नहीं मानते क्योंकि वह तो जन सामान्य की पीडा से जुडा है, भोक्ता है। इस प्रकार साहित्य मानव स्वत्व का अध्ययन है।

मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं जो अपने आपको आत्मनिषेधों से मुक्त कर साहसपूर्वक अपने भीतर अनुभवात्मक ज्ञान व्यवस्था या विश्वदृष्टि को विकसित करें और उसी के आधार पर काव्य रचना में प्रवृत्त हो। साहित्य में प्रकट लेखक की विचारधारा को विश्वदृष्टि कह सकते हैं। मुक्तिबोध विश्वदृष्टि का विकास द्वंद्वात्मक मानते हैं। उनके अनुसार ''कवि विश्वदृष्टि कहीं से प्राप्त नहीं करते बल्कि अर्जित ज्ञान के आलोक में अनुभूत जीवन तथ्यों का स्वयं विश्लेषण कर उसे अपने भीतर विकसित करते हैं। अर्थात् यह दृष्टि न सिर्फ ज्ञान के बल पर प्राप्त की जा सकती है, न सिर्फ अनुभव के बल पर। इसकेलिए ज्ञान और निजी प्रयास दोनों का संयोग अवश्यक है। इसलिए इसकी विकास की प्रक्रिया द्वंद्वात्मक है।''[2] नयी कविता की जो सीमा उन्हें दिखाई देती है वह है विश्वदृष्टि का अभाव। उनके अनुसार उसके पीछे पश्चिम से आयातीत कला सिद्धान्त था और उस कला सिद्धान्त के पीछे प्रगतिशीलता विरोधी एक राजनीति थी। विश्वदृष्टि का

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध पृ. 76
मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना नंदकिशोर नवल. पृ. 22

अभाव कवियों में बेचैनी, ग्लानि, अवसाद, विरक्ति आदि भाव उत्पन्न होते हैं। इसलिए विश्वदृष्टि का अभाव उनके और साहित्य केलिए ही नहीं देश केलिये भी हानिप्रद है।

मुक्तिबोध परंपरा का स्वस्थ अर्थ में ग्रहण करते हैं और उसे मानव विकास में सहायक मानते हैं। उनके शब्दों में ''हम पूर्वगामी कवियों के कंधे पर खडे होकर विश्व देख रहे हैं।''[1] ये कंधे भारतीय कवि लेखक के ही नहीं इसमें विश्व के साहित्यकारों का भी योगदान है। मुक्तिबोध अपने परिवेश को समझने और समझाने की कोशिश में सहायक होनेवाले विश्व साहित्य को अपनी विरासत मानते हैं।

मुक्तिबोध की मान्यता है कि कलाकार साहित्य में अपनी अपनी विधायक कल्पना के द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। यह पुनर्रचना ही जो सारतः उस जीवन का प्रतिनिधित्व करती है जो कलाकार या अन्य लोगों द्वारा इस संसार में जिया और भोगा जाता है, कलाकृति होती है जिया और भोगा जानेवाला जीवन विशिष्ट वस्तु है। जीवन की पुनर्रचना में इस विशिष्ट से सामान्य की ओर जाया जाता है। इसका फल होता है कला का प्रभाव सर्वकालिक सर्वजनिक हो जाता है। इस प्रकार देशकालातीत स्थिति प्राप्त कर कलाकृति शाश्वत साहित्य का अंग बन जाती है।

मुक्तिबोध की दृष्टि में सृजनशील कल्पना के सहारे, संवेदित अनुभव ही का विस्तार हो जाने पर सौंदर्य उत्पन्न होता है। कलाकार का वास्तविक अनुभव और अनुभव की संवेदनाओं से प्रेरित फैंटसी दोनों के बीच कल्पना का एक रोल होता है। वह रोल वह भूमिका एक सृजनशील भूमिका है। वह कल्पना उसे वास्तविक अनुभव की व्यक्तिगत पीडाओं से हटाकर इस अनुभव को ही दृश्यवत करके इसी अनुभव को नये रूप में उपस्थित करके देती है। मुक्तिबोध नयी कविता के समानांतर यथार्थवादी सौन्दर्यशास्त्र

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पॉच मुक्तिबोध पृ 281

रचना चाहते हैं। वे काव्य सौंदर्य और जीवन के अंतरंग संबंध पर प्रकाश डालते हैं। डायरी में उन्होंने बताया है कि ''कवि जीवन के मूल्य वास्तविक जीवन से स्वतंत्र होते तो साहित्य में सौंदर्य नामक जो प्रभावशाली गुण होता है वह होता ही नहीं।''[1] यह गुण सौन्दर्य की स्थिति और लय वास्तविक जीवन पर आधारित है। सौन्दर्यानुभूति का क्षण नितांत दुर्लभ नहीं होते। दिन में कई बार मनुष्य अपनी आत्मबद्ध दशा पार कर अनुभूति की अवस्था में पहूँच जाता है। सहानुभूतिपूर्ण उदारता से लेकर विज्ञान तक इस दशा का विस्तार है। मनुष्यता का विकास करनेवाली यह प्रवृत्ति मात्र कलाकारों में नहीं जीवन के प्रत्येक स्तर के लोगों में विद्यमान है।

मुक्तिबोध कलाकार का रचनाकार्य क्षण विशेष तक सीमित न करके जीवन व्यापी मानते हैं। रचनाकाल की सौन्दर्यानुभूति पहले से संचित अनुभूतियों से मिलकर एक विशेष दशा में उमट पडती है। इसी कारण नये-नये रूपाकृतियों की अवधारणा होती है इस कारण से वे कलाकार का रचनाकार्य क्षणविशेष तक सीमित न करके जीव्न व्यापी मानते हैं। यदि कला का सृजन सौन्दर्यानुभूति के क्षण में होती तो महाकाव्यों तथा लंबी कविताओं का सृजन असंभव है क्योंकि क्षण का इतने दीर्घविस्तृत सतत और क्रमगत होना असंभव है।

मुक्तिबोध ने समीक्षा संबंधी अपने विचार भी प्रकट किये हैं। समीक्षा केलिए रचनाकार की संपूर्ण जीवन पद्धति, सामाजिक स्तर पारिवारिक स्थिति, रुचि-अरुचि, सौन्दर्य दृष्टि और पूरी मूल्य व्यवस्था भी विचारणीय है। उनके अनुसार कला-विवेक मूलतः जीवन विवेक है, अतः समीक्षक केलिए यह आवश्यक है कि पहले वह जीवन को समझे जिसकी अभिव्यक्ति रचना में हुई। उपर्युक्त समझ के अभाव में समीक्षा खोखले मालूम होते हैं। उनके अनुसार समीक्षा का लक्ष्य साहित्य की गलतियों को मिटाकर उसे

---

1 मुक्तिबोध रचनावली चार मुक्तिबोध पृ 116-117

शुद्ध करना है। "मेरे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि समीक्षा की भाषा, समीक्षा शैली, समीक्षा के अंतर्गत विचारधारा की अभिव्यक्ति इस प्रकार से हो कि लेखक यह समझ सके कि समीक्षक उसका शत्रु नहीं उसका मित्र है, उसका भ्राता है तभी वह लेखकों का विश्वास प्राप्त कर सकेगा।"[1]

मुक्तिबोध कला, को समाज सापेक्ष मानते हैं। कला की स्वायत्त - स्वतंत्र सत्ता कविजीवन सापेक्ष है। कलाकार का व्यक्तित्व सामाजिक होने के कारण अपनी संपन्नता और विकास केलिए समाज पर निर्भर करता है। इसलिए कला और कलाकार परस्पर सापेक्ष है। वे सृजन प्रक्रिया के विश्लेषण द्वारा कला की सापेक्षता पर ज़ोर देते हैं। वे वृक्ष, फूल और फल के भाँति, कला के तीन क्षणों की स्थिति भी परस्पर संबद्ध और आत्मनिर्भर मानते हैं। सृजन प्रक्रिया का पहला क्षण अत्कट तीव्र अनुभव क्षण है जो जीवन संघर्ष से प्राप्त होते हैं। इस क्षण के बिना दूसरा क्षण अर्थात् सौन्दर्यानुभूति का क्षण असंभव है। यह क्षण का संघर्ष वस्तुतः आत्मसंघर्ष और आत्मसाक्षात्कार का क्षण है। दूसरा क्षण अपनी पूर्णावस्था प्राप्त करने पर कला का तीसरा क्षण अभिव्यक्ति संघर्ष का क्षण उपस्थित होता है। इन तीनों क्षणों में संघर्ष विद्यमान है। इस संघर्ष से उत्पन्न होनेवाली कृति जीवन की प्रतिक्रिति नहीं होती। उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं। पुनर्रचित जीवन लोक की अपनी ओटोनॉमी है उसका अपना एक स्वायत्त तंत्र है किन्तु उसकी यह ओटोनॉमी, स्वायत्ततंत्र सापेक्ष है, क्योंकि वह वास्तविक जीवन के ठोस आधार पर खडा हुआ है और उसके बिना वह असंभव है।[2]

मुक्तिवोध हमेशा शिल्प पर विशेष रुचि रखते थे। 'कामायनी एक पुनर्विचार' के आरंभ में फैंटसी पर विचार करते हुए उन्होंने तीन कलात्मक शिल्पों की चर्चा की है।

---

1 नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र मुक्तिबोध, पृ. 31
2 मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध, पृ. 112

यथार्थवादी शिल्प में यथार्थ के बिंबों की क्रमबद्ध रचना की जाती है। रोमैंटिक शिल्प में कल्पना जीवन की स्वानुभूति विशेषताओं को समष्टि चित्रों में प्रकट करती है। फैंटसी शिल्प के अंतर्गत कवि क्लपना जीवन की सारभूत विशेषताएँ प्रकट करते हुए ऐसी चित्रावली प्रस्तुत करती है जिससे तथ्यात्मक जीवन, जिसकी स्वानुभूत विशेषताएँ प्रोद्भासित की जाती है। अर्थात् फैंटसी में भावपक्ष प्रधान और विभावपक्ष गौण है। भाव पक्ष कल्पना को उत्तेजित करके बिंबों का सृजन करता है। मुक्तिबोध यथार्थवादी शिल्प और यथार्थवादी दृष्टिकोण में अंतर मानते हैं ''यथार्थवादी शिल्प के विरुद्ध जो भाववादी शिल्प है उसमें जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही है।''[1] मुक्तिबोध का साहित्य फैंटास्टिक शैली में रचित होने के कारण जीवन के यथार्थ की पूर्णतर समझ हैं।

डायरी के 'तीसरा क्षण' शीर्षक लेख में कला के तीन क्षण द्वारा फैंटसी की अवधारणा पर विचार किया है। ''पहला क्षण जीवन के उत्कट तीव्र अनुभव क्षण, इस क्षण में फैंटसी का तत्व निहित है लेकिन दूसरा क्षण में वह तत्व फैंटसी का रूप धारण करता है अर्थात् फैंटेसी का विकास शुरू होता है और तीसरा क्षण में फैंटेसी शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और प्रक्रिया का परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। फैंटेसी को शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो सृजन होता है - जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है - वही कला का तीसरा और अंतिम क्षण है।''[2]

प्रभाववान कविताओं के सृजन केलिए बिंबों की अनिवार्यता पर मुक्तिबोध ज़ोर देते हैं। उनकी राय में ''सिर्फ बहुत बडी थीम (विषय) उठा लेने से काम नहीं चलता। यह ज़रूरी है कि सिर्फ उतना ही अंश उठाया जाये जिसका मन पर अत्यधिक आघात हुआ हो।''[3] आसमान के चित्रण में पूर्णता मिलने केलिए सूरज का बिंब का चित्रण करना

---

1 मुक्तिबोध रचनावली चार- मुक्तिबोध पृ. 197
2 मुक्तिबोध रचनावली चार मुक्तिबोध पृ 85
3 एक साहित्यिक की डायरी मुक्तिबोध, पृ. 10

चाहिए क्योंकि पूरा वस्तु सत्य इस इमेज में आ गया है। इसलिए वह महत्वपूर्ण है। वह जीवन सत्य से अधिक निकट भी है। अर्थात कविता में किसी विराटता के चित्रण केलिए बिंब के सहारे हमारे मन को अत्यधिक प्रभावित करनेवाले अंश को जोड़ना चाहिए। तभी कविता की सर्जनात्मक क्षमता मज़बूत और प्रभावशाली बन जाती है।

मुक्तिबोध कविताओं में प्रयुक्त रंग पर भी विचार करते हैं। संवेदनशील कवि सहज मानवीय आकांक्षाओं की पूर्तिके सामाजिक वातावरण के अभाव में उसके काव्यात्मक रंग अधिक श्यामल, अधिक बोझिल और अधिक आत्मग्रस्त हो जाते हैं। उस प्रयोग से कवि का लक्ष्य यह है कि "जिससे लोगों को आज की हालत की जानकारी मिले।"[1] कविता न कोई नाटक है जिसमें जीवन यथार्थ उपस्थित करते हैं। यह जीवन यथार्थ भाव बनकर, बिंब बनकर या विचार बनकर प्रस्तुत होता है।

मुक्तिबोध ने अपनी लंबी कविता पर भी विचार व्यक्त किया है। उनके अनुसार "यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है, वह भी ऐसा ही गतिशील है।"[2] और उसके तत्व भी परस्पर गुँफित हैं। जाहिर है यथार्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति कविता के लंबे आकार में भी संभव हो सकती है, छोटी कविता यथार्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति केलिए अपर्याप्त भी सिद्ध होगी।

मुक्तिबोध की रचना प्रक्रिया संबंधी एक प्रसिद्ध अवधारणा है 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना'। संवेदना का संबंध व्यक्ति से होता है तो ज्ञान का संबन्ध समाज से, संवेदना का संबंध भावना से होता है और ज्ञान का बुद्धि से, संवेदना का संबंध विशिष्ट से होता है तो ज्ञान का सामान्य से, संवेदना का संबंध भोक्ता से होता है तो ज्ञान

---

1 एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध,पृ 41

2 वही पृ. 30

का द्रष्टा से[1] रचनाप्रक्रिया के दौरान वैयक्तिक निर्वैयक्तिक बन जाता है, विशिष्ट सामान्य। कवि की अभिव्यक्ति का आमूर्तीकरण हो जाता है। इस प्रकार कवि की निजी समस्या मानव समस्या का रूप ले लेती है। ध्यान देने के बात यह है कि इस प्रक्रिया में वैयक्तिकता, विशिष्टता और मूर्तता समाप्त नहीं होती बल्कि वह अपने सार रूप में प्रकट होती है। इस तरह रचना प्रक्रिया में वैयक्तिकता में निर्वैयक्तिकता का और निर्वैयक्तिकता में वैयक्तिकता का तथा आत्मपरकता में वस्तुपरकता का और वस्तुपरकता में आत्मपरकता का समावेश होता है। जटिलता में देखने पर संवेदनात्मक ज्ञान में संवेदना और ज्ञानात्मक संवेदना में ज्ञान का समावेश होता है और इन दोनों का जटिल सम्मिश्रण है।

संक्षेप में यह कह सकता है कि मुक्तिबोध साहित्य सृजन के साथ साथ साहित्यसंबंधी निजी मान्यताएँ भी रखते थे। उनके साहित्य संबंधी विचार बौद्धिक, गंभीर और विचारशील होने के नाते आज भी सर्वमान्य हैं।

## मुक्तिबोध की प्रासंगिकता

आजकल प्रासंगिकता साहित्य की कसौटी है। आज साहित्य में प्रासंगिकता के बिना साहित्यिक कृतियों को अस्तित्व नहीं। प्रांसंगिकता समकालीनता का सबसे प्रमुख शर्त है। बिल्कुल नयी पीढी के साहित्यकार होने पर भी उनकी रचनाओं में प्रासंगिकता नहीं है तो वह समकालीन नहीं हो सकता। प्रासंगिकता के अभाव में साहित्यकार का समकालीन होना असंभव है। हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध का साहित्य प्रासंगिक है। साढे

---

1 मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना नंद किशोर नवल, पृ. 70

तीन दशक के बाद भी मुक्तिबोध का साहित्य अटल है। मुक्तिबोध की सार्थकता इसमें है कि उनकी रचनाओं में जो समस्याएं हैं वह कल भी थी, आज भी है, कल भी रहेगी।

मुक्तिबोध की रचनाएँ अपने समय की तथा अपने आगे के समय की कठोर वास्तविकताओं का जीवंत साक्ष्य है। उन्होंने एक प्रतिबद्ध साहित्यकार की भाँति अपनी रचनाओं में अपने समय के यथार्थ को ऐतिहासिक परिदृश्य दे दिया। मुक्तिबोध की रचनाओं पर विचार करने की स्थिति अपने युग में काफी कमज़ोर थी। लेकिन उनकी रचनाएँ अपनी प्रासंगिकता के कारण आज के साहित्यिक बहस का केन्द्रीय विषय है।

मुक्तिबोध जिन्दगी से साहित्य और साहित्य से जिन्दगी को जोडकर प्रस्तुत करनेवाले थे। इसलिए उनकी रचनाएँ हमारे समाज के विभिन्न दृश्यों से परिपूरित होकर सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन करनेवाली है। प्रतिदिन की सामाजिक,राजनीतिक समस्याओं को साहित्य का विषय बनाकर जीवन संघर्षों से लगातार जूझकर अपने समाज और सामाजिक प्राणी को संघर्ष मुक्त करने केलिए उन्होंने आजीवन प्रयास किया। वर्तमान परिवेश में व्याप्त अभाव, तनाव, घुटन, षड्यंत्र, स्वार्थभरी स्थितियों का सच्चा अंकन उनकी रचनाएँ प्रस्तुत करती हैं। वर्ग संघर्ष का अहसास, श्रमिकों व पीडितों के सूखे अधरों केलिए सहानुभूति का जल पूँजीवादी व्यवस्था की भर्त्सना, वर्गरहित समाज की आकर्षक कल्पना, प्रतिबद्धता जैसे तत्व उनकी रचनाओं को प्रासंगिक बनाने में सहायक है। क्योंकि आज के इस दूषित सांस्कृति में उपर्युक्त तत्वों को मूल्य बन कर रखना परमावश्यक है।

काल्पनिकता के स्थान पर यथार्थ का आधिक्य होने का कारण उनकी रचनाएँ वास्तविकता के अधिक निकट है। यह विशेषता औसत आदमी के दर्द की पहचान कराने में सक्षम है। मामूली आदमी को रचनाओं के केन्द्र में रखकर उनके दर्द को अपना मानकर असे वे साहित्य कृतियों में अभिव्यक्त करते हैं।

मुक्तिबोध की रचनाएँ व्यवस्था के विपक्ष की रचनाएँ हैं। यही उनकी प्रासंगिकता का कारण है; क्योंकि आज की व्यवस्था के बाहर प्रकट रूप उसका वास्तविक रूप नहीं है। उसके भीतर अत्याचार, शोषण आदि कुत्सित वृत्तियों से कलुषित एवं लूट पाट,नोच कसोट आदि से दूषित है। समाज से प्रतिबद्ध एवं मामूली आद्मी के प्रति आर्द्र संवेदना से परिपुष्ट यह रचनाकार का साहित्य वर्तमान व्यवस्था के विपक्ष में खड़ा है।

कालबोध के साथ इतिहास बोध का आभास मुक्तिबोध की रचनाओं को प्रासंगिक बनाता है। उनकी रचनाओं में अपने समय के प्रति रागात्मक संसक्ति के कारण समसामयिकता का आभास पर्याप्त मात्रा में मिलती है। उनके साहित्य में दृष्टिगत समसामयिक समस्याएँ काफी मात्रा में आज की भी केन्द्रीय समस्या है। इन समस्याओं का सुलझाव आजभी स्वप्न मात्र है। इसलिए भविष्य में भी ये समस्याएँ जारी रहने की संभावना अधिक है। संवेदनशील और जनसाधारण में निकटतम सरोकार रखनेवाले तथा बौद्धिकता से संपन्न विवेकशील साहित्यकार होने के कारण मुक्तबोध ने अपने समाज में एक महामारी की तरह फैली समस्याओं को अपनी दीर्घदृष्टि से पहचाना और अपनी साहित्यिक कृतियों तथा पत्रिकाओं द्वारा इन कठोर वास्तविकताओं को जनसाधारण तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। इसी सर्जनात्मक क्षमता के कारण मुक्तिबोध की साहित्यिक कृतियों की प्रासंगिकता आज भी नहीं खोती। श्री. केदारनाथ सिंह के शब्दों में ''श्रेष्ठ या कालजयी होने की क्षमता वहाँ से अर्जित करते हैं जहाँ वे सबसे अधिक कालबद्ध होते हैं।''[1]

मुक्तिबोध का साहित्य प्रगतिशील है। उनकी साहित्यक रचनाएँ वैज्ञानिकबोध से युक्त है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध का साहित्य युग के बदलती

---

1 मेरे समय के शब्द केदारनाथ सिंह प 69

करवट के साक्षी है और जनजीवन से गहरा सरोकार रखनेवाला है। इतिहास की गहरी अंतर्दृष्टि मुक्तिबोध में दिखाई देती है। अतीत की जानकारी उनको है वर्तमान को उन्होंने गहराईयों में उतरकर देखा परखा है। संभवतः इसी कारण से भविष्य़ भी उनकेलिए स्पष्ट रहा। मनुष्य के इतिहास की विरासत को समझनेवाले साहित्यकार होने के कारण मुक्तिबोध का साहित्य देश और काल की सीमा को अतिक्रमण करती हुई प्रासंगिकता और शाश्वतता को एक साथ वहन करती है। अर्थात उनका साहित्य कालजयी साहित्य है।

अध्याय दो

# मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं का विश्लेषण

## तार सप्तक का महत्व

'तार सप्तक' का प्राकाशन सन् 1943 में हुआ। लेकिन 'उक्त संकलन का आयोजन 1941-42 में ही हो चुका था। ''तारसप्तक की योजना दिल्ली के अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन (1942) के दौरान बनी।''[1] संकलित सात कवियों में हिन्दी कविता के शिखर तक आनेवाले दो कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध के नाम आते हैं। मुक्तिबोध आधिकाधिक चर्चा के केंद्र में रहे हैं। यही नहीं कि आगामी कविता को दिशा देने में मुक्तिबोध की कविताओं की महत्वबूर्ण भूमिका रही है। मुक्तिबोध की मौलिक सर्जनात्मक शक्ति और ऊर्जा का पूरा प्रकाश उनकी कविताओं में ही मिलता है। रचनात्मकता की अदम्य ऊर्जा और स्वर का निजी वैशिष्ट्य उनकी कविता का विशेष आकर्षण है।

यूगीन वास्तकिताओं को व्यक्ति और समाज के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त करने में तारसप्रकीय कविताओं का योगदान सराहनीय है। ये कविताएँ वस्तु और विन्यास में अपने नवीन प्रयोगों के कारण हिन्दी कविता क्षेत्र में नवीनता ला सकीं। परंपरा से मुक्त होकर, लेकिन विरासत की सही जडों को पहचान कर तारसप्तकीय कविताएँ अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्नार्थी संवेदना की अभिव्यक्ति सिद्ध हूई। केदारनाथ सिंह के शब्दों में ''तार सप्तक का महत्व इस बात में है कि उनमें आज की कुछ स्थितियों का पूर्वाभास उपलब्ध है।''[2]

---

1 कविता के नये प्रतिमान नामवर सिंह पृ 90
आलोचना, सितंबर 1967 पृ. 124

## तारसप्तक और मुक्तिबोध

तार सप्तक में मुक्तिबोध की सोलह कविताएँ हैं। इन कविताओं का रचनाकाल 1940 और 1942 के बीच में है। कविताओं के साथ उनका कविवक्तव्य भी है। इस वक्तव्य में अपने काव्यसंबंधी लक्ष्य पर वे विचार करते हैं। "कला का केंद्र व्यक्ति है, पर उसी केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता है।"[1] अपने समय की कविता के व्यक्तिनिष्ठ-स्वभाव से वे परिचित थे। लेकिन आत्मानिष्ट और व्यक्तिनिष्ठ - कवि -दृष्टि की भी अपनी प्रासंगिकता है जिस से वे परिचित हैं। लेकिन उनकी कविता संबंधी दृष्टि समाज के यथार्थ में अपना स्वत्व पाती है। इसलिए व्यक्ति को केन्द्र में समझनेवाली दृष्टि दिशाव्यापी होने की बात पर उन्होंने बल दिया है।

तार सप्तक में संकलित मुक्तिबोध की कविताएँ विभिन्न प्रकार अनुभव प्रदान कर रही हैं। उस में कल्पना प्रवण भाव है जो छायावादी प्रभाव से है, भाववादी दृष्टि भी है जो वर्गसाँ का प्रभाव है, पुरोगामी चिंतन का प्रभाव भी है जो मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण है। मुक्तिबोध तारसप्तक के वे कवि है जिनका कविव्यक्तित्व व्यक्तिवादी धारा से आरंभ होता है और क्रमशः सामाजिकता की ओर अनुभव या उन्मुख हुए हैं अथवा व्यक्ति यथार्थ सत्य का सामाजिक यथार्थ सत्य के द्वंद्व में विचरते हैं।[2]

वैयक्तिक उन्मुरवता के बावजूद मुक्तिबोध की तारसप्रकीय कविताएँ सामाजिकता से युक्त हैं। तारसप्तक के वक्तव्य में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि आज के वैविध्यमय उलझन से भरे रंग बिरंगे जीवन को यदि देखना है, तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उडकर बाहर जाना ही होगा। बिना उसके इस विशाल जीवन - समुद्र की परिसीमा

---

तारसप्तक सं अज्ञेय, पृ 7

गजानन माधव मुक्तिबोध जीवन और काव्य महेश भटनागर, पृ. 46

उसके तट-प्रदेशों के भू-खण्ड आँखों से ओट ही रह जायेंगे।[1] उनकी कविताएँ सामाजिक संक्रांति की बास्तविक अभिव्यक्ति के कारण सफल पहचान की क्षमता से ओतप्रोत हैं।

तार सप्तक के अन्य किवयों की अपेक्षा मुक्तिबोध की कविताओं में जनसंबद्धता और प्रतिबद्धता के संकेत अधिक हैं। तार सप्तकीय वक्तत्य में वे लिखते हैः ''मेरी ये कविताएँ अपने पथ ढूँढने वाले बेचैन मन की अमिव्यक्ति है।''[2] उनका मन सामाजिक परिवर्तन केलिए बाधक तत्व बनी हुई। पूँजीवादी व्यवस्था का हनन कर एक नूतन व्यवस्था स्थापित करने तथा उसके पथ ढूँढने केलिए बेचैन है। इन कविताओं में ही संधर्ष विद्यमान है, भलेही परवर्ती कविताओं की अपेक्षा संधर्ष की तीव्रता कम हो। जनसाधारण का पक्षधर होने का निर्णय तथा अपने को समाज के होने की कल्पना इन कविताओं में स्पष्ट है।

मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताएँ उनके व्यक्तित्व विकास की प्रतीक कविताएँ हैं। यही नहीं ये कविताएँ हिन्दी कविता के व्यक्तित्व के लिए भी उदाहरणीय है।

## मुक्तिबोध की तारसप्रकीय कविताओं की मनोभूमि

यह विदित बात है कि तारसप्तक में संकलित मुक्तिबोध की कविताएँ बाद की कविताओं से अलग पहचान रखने वाली हैं। जैसे कि उपरोक्त सूचित है कि ये कविताएँ उनके काव्य विकास का स्पष्ट गवाह है। इन कविताओं में एक ओर रोमानियत की शीतल छाया है तो दुसरी ओर बर्गसाँ और इमर्सन का स्पष्ट प्रभाव भी है। उन्होंने इन कविताओं मे एक यूवा शोधक की भाँति कविताओं के भीतर यथार्थ को खोजने का प्रयास

---

1 तारसप्तक अज्ञेय, पृ 7
वही पृ 8

किया। इसी बीच में मार्क्सवाद की ओर झूकाव ने उनकी प्रगतिशील दृष्टि को भी विस्तृत किया है।

## छायावादी रोमानियत की स्पष्ट छाया

मुक्तिबोध के साहित्य सृजन का आरंभ छायावाद और प्रगतिवाद की सन्धि रेखा में होता है। इसलिए उनकी प्रारंभिक कविताओं में सीमित छायावादी प्रभाव देखने को मिलता है। वे रोमान्स को ''प्रवाहमान जीवन धारा का Self assertion मानते हैं।''[1] मुक्तिबोध का किशोर कवि-मन ने छायावाद का अनुकरण करने का खूब प्रयास किया। लेकिन उनपर छायावादी असर उतना गहरा नहीं है। उनका छायावादी अनुकरण केवल शिल्प पक्ष तक सीमित रहा है। उनमें छायावादी शब्दावावली तथा शौली का संस्पर्श दिखाई पडता है। छायावाद के चिंतन पक्ष मुक्तिबोध की कविताओं मे नहीं है। उनकी कविताओं पर महादेवी जैसी छायावादी कवियों का प्रभाव हम अनूभव कर सकते हैं। ''उन दिनो भी एक मानसिक संधर्ष था। एक और हिन्दी का यह नवीन सौदंर्य काव्य था, तो दूसरी और मेरे बाल मन पर मराठी साहित्य के अधिक मानवतामय उपन्यास-लोक का भी सुकुमार परंतु तीव्र प्रभाव था। तालस्ताय के मानवीय समस्या संबंधी उपन्यास था महादेवी वर्मा।''[2] 'खोल आँखें' शीर्षक कविता में मानवीय आस्था के नूतन स्वप्न को श्रावण साँझ के सुंदर दिवस की बरसात के समान मधुरतम और आश्चर्यमय मानते हैं

''उस महा - व्याकुल अनावृत ज्ञान लिप्सा
के क्षितिज पर

---

1 नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, मुक्तिबोध, पृ 110
2 तारसप्तक सं अज्ञेय, पृ. 5-6

जो खिंचा है स्वप्न -

श्रावण साँझ के वितरित घनों पर

अमित नीला जामूनी, अति लाल, सुंदर

दिवस की बरसात को सूर्यास्त का चूंबन

कि ऐसा अद्वितीप

मधूरतम

आश्चर्यमय''[1]

भाषा का विन्यास और वस्तु के चयन में छायावादी प्रभाव प्रकट है। सृजन क्षण शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

''मैं केवल तुम पर जीवत हूँ

मेरी साँस किंतु तेरा तन,

मेरी आस और तेरा मन,

तू है हृदय और मैं लोचन

मैं हूँ पूर्ण, अपूर्ण झेलकर।

मैं अखण्ड, खण्डित प्रतिभा पर।''[2]

इस में महादेवी की रहस्यवादी कविता की छाया है, इस कविता के द्वारा कवि का लक्ष्य रहस्यमयता की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि इसनें जनसाधारण से कवि की एकता प्रकट करने का प्रयास व्यंजित है। छायावादी कल्पना भी मुक्तिबोध की कवि कल्पना बन जाती है। 'दूर तारा' शीर्षक कविता में तारा जो कवि का काल्पनिक चित्र है। लेकिन

---

1 तारसप्तक अज्ञेय, पृ. 14 15

वही 29

यहाँ छायावादी सौदर्य का चित्रण नहीं। यह शक्ति से संचालित मानव की कल्पना का प्रतीकत्व प्रकटन है।

''तीव्र गति

अति दूर तारा,

वह हमारा

शून्य के विस्तार नीले में चला है''[1]

जिस प्रकार शून्य आकाश में तारा है वैसे ही मनुष्य बाहरी शक्ति से नहीं, भीतरी शक्ति से संचालित होकर प्रगति की ओर बढता है। यहाँ पर कल्पना मनुष्य केन्द्रित हो पाती है। 'आत्मा के मित्र मेरे' कविता की निम्न पंक्तियों में भी भाषा के स्तर छायावादी प्रभाव के होते हुए भी उससे परे है।

''वह परस्पर की मृदुल पहचान जैसे

अतल - गर्भा भव्य धरती हृदय के निज कूल पर

मृदु स्पर्श कर पहचान करती,''[2]

इस कविता में छायावादी श्रृंगारिक कविता का अहसास है। पर यह सामान्य श्रृंगारिकता नही है। यह कविता, कवि पर अपने आदर्श मित्र के प्रभाव का भावात्मक वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि मुक्तिबोध पर छायावादी कविताओं की भाषा और शैली का ही प्रभाव है न कि वर्ण्यवस्तु का।

## आत्म निष्ठता की पृष्ठभूमि

व्यवस्थित जीवन दर्शन अपनाने की प्यास आरंभ से ही मुक्तिबोध में रहा हैं व्यवस्थित जीवन दर्शन अर्थात मार्क्सवाद अपनाने तक वे बर्गसाँ, इमर्सन जैसे भाववादी दार्शनिकों के प्रभाव में थे। ''1938 से 1942 तक के पाँच साल मानसिक संधर्ष और वर्गसोनीय व्यक्तिवाद के वर्ष थे। आंतरिक विनष्ट अशांति के और शारीरिक ध्वंस के इस समय में मेरा व्यक्तिवाद कवच की भाँति काम करता था।''[1] मक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं में इन दार्शनिकों के सिद्धांतों का असर विद्यमान है। भाववादी दर्शन में व्यक्ति और आत्मा को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। बर्गसाँ के सिद्धांतों जैसे 'जीवन शक्ति का सिद्धांत' 'परिवर्तन सिद्धांत' 'जीवन संवेग सिद्धान्त' 'काल की गतिशीलता' का सिद्धांत आदि का प्रभाव उनकी कविताओं में विद्यमान है। तारसप्तक की कविताएँ जैसे 'आत्मा के मित्र मेरे' 'सृजन क्षण' 'मृत्यु और कवि' 'दूर तारा' 'मेरे अंतर' 'खोल आंखें 'व्यक्तित्व और खंडहर' आदि इसके स्पष्ट उदाहरण है। बर्गसाँ के जीवन शाक्ति सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति को विश्वास और आगे बढने की सामर्थ्य कही बाहर से प्राप्त नहीं होती बल्कि अपने अंतर्मन की शक्ति के द्वारा प्राप्त हांती है। इस 'जीवन शक्ति सिद्धांत' को अभिव्यक्त करने वाली एक कविता 'आत्मा के मित्र मेरे' का उदाहरण देखिए

''पत्ते भी खडे चुपचाप सीने तान
अपनी व्यक्तिमत्ता के सहारे जो चले हैं प्राण,
उनको कौन देता है
अचल विश्वास का वरदान!

---

1 वही 6

उनको कौन देता है प्रखर आलोक

खुद ही जल

कि जैसे सूर्य!''[1]

पत्ते यहाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रतीक है जो अपनी सामर्थ्य के बल पर अपनी भीतरी शक्ति के बल पर विकसित होते हैं। उनको आत्मविश्वास अर्थात आगे बढने की राह या प्रखर आलोक, और किसी से नहीं बल्कि अपनी भीतर से प्राप्त होता है। सूर्य जिस प्रकार अपने भीतर की क्षमता से स्वयं जलते हैं उसी प्रकार व्यक्ति भी अपने अंतर्मन की क्षमता से विकसित होता है। हमें अपने विकास के लिए बाहरी परिवेश से कोई सहायता नहीं मिलती। अपना सच्चा मित्र अपने ही अंतर्मन की क्षमता है। मुक्तिबोध का मित्र अपने बाहर के परिवेश से लभ्य सभी सहायता त्याग कर या पीछे छोडकर आगे बढता है। वही उनका आदर्श मित्र है -

''माता - पिता - पत्नी सूहृद पीछे रहे है छूट

उन सबके अकेले अग्र में जो चल रहा है

ज्वलत तारक - सा,

वही तो आत्मा का मित्र है

मेरे हृदय का चित्र है।''[2]

बर्गसाँ के जीवनवाद सिद्धांत के अनुसार जीवन किसी यांत्रिक भौतिक प्रक्रिया की देन न होकर उन विशिष्ट अभौतिक तत्वों की देन है जो प्रत्येक सजीव वस्तु में अंतर्लीन होते है। यह जीवन सतत गतिशील और क्रियाशील है। इस्के मार्ग में भौतिक बाधाएँ आती हैं। लेकिन यह उनको पराजित करता हुआ ऊँचा उठता जाता है। यह विविध

---

1 तारसप्तक स अज्ञेय पृ. 11

2 तारसप्तक सम. अज्ञेय. पृ 11

रूपों में प्रकट होने वाला और निरंतन सृजनशील है। इस जीवन को तर्क और बुद्धि से नहीं सहज बोध से समझा जा सकता है। 'दूर तारा' शीर्षक कविता इस सिद्धांत से प्रभावित है। इस किवता में शून्य नीलाकाश में भागते एक तारा का चित्र है-

''जो कि अपने ही प्रगति - पथ का सहारा,

जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र,

भीतिहीन विराट - पुत्र।

इसलिए प्रत्येक मनू के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूँ।''[1]

तारा जो जीवन का प्रतीक है अपनी अभौतिक प्रेरणा से गतिशील है। हर व्यक्ति की अभौतिक सृजनशील सत्ता से प्रेरित होने के कारण अपनी अपनी भुमिका निभानी है। इसलिए मुक्तिबोध प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करते है।

बर्गसाँ के अनुसार हम और हमारी भावनाएँ निरंतर बदलते रहते है। हमारी मानसिक स्थिति एक सी नहीं होती। अर्थात् निरंतरता का प्रवाह अवश्य हो जाता है। मुक्तिबोध 'सृजन क्षण' नामक कविता में बर्गसाँ की तरह यह बात इस प्रकार कहते हैं।

''यह छिछलापन लघु अंतर का

क्षण क्षण नूतन को करता है शीघ्र पूरातन।

यों नूतन की विजय चिरंतन,

महामरण पर महाजन्म का उदय क्षिप्रतर,

महाभयंकर से बहता है परम शुभंकर।''[2]

अंतर का छिछलापन नूतन को हर पल पूरातन में परिवर्तित करता रहता है। इस प्रकार नित्य नूतन की सृष्टि होती रहती है। मृत्यु पर जन्म का अशुभ पर शुभ का उदय

---

तारसप्तक सम अज्ञेय पृ 13

तारसप्तक स अज्ञेय, पृ 27

होता है और इस परिवर्तन की प्रक्रिया से सृष्टि के विकास का नैरंतर्य बना रहता है। इस प्रकार हम निरंतर महत्व से महत्व की ओर अग्रसर होते हैं।

## काल की गतिशीलता

बर्गसाँ की काल की गतिशीलता के सिद्धांत को भी मुक्तिबोध ने कई स्थानों पर अभिव्यक्त किया है। बर्गसाँ की मान्यता है कि ''जीवन का सार, काल में निहित है देश में नहीं। काल एक अखंड प्रवाह है और सहज बोध का विषय है। यह सतत परिवर्तनशील है। यह चेतना व्यक्ति के लिए अस्तित्व में बने रहने का मतलब है परिवर्तित होना, परिवर्तित होने का मतलब है परिपक्व होना परिपक्व होने का मतलब है निरंतर अपने सृजन का सृजन करते जाना। 'मृत्यू और कवि' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध बर्गसाँ की काल-धारणा प्रभाव अनुभव किया जा सकता है।

''यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, मानव जीवन है क्षण भंगूर,
ऐसा मत कह मेरे कवि, इस क्षण संवेदन से हो आतुर
जीवन चिंतन में निर्णय पर आकस्मात मत आ, ओ निर्मल!''[1]

बर्गसाँ के जीवन संवेग के सिद्धांत में मृत्यु तिरस्कृत है, बल्कि वह मृत्यु को जीतने की बात कहता है। तार सप्तक की 'मृत्यू और कवि' मृत्यु से संबन्धित कविता है इसमें कवि ने मृत्यु का निषेद किया है। मृत्यु पर विचार करना व्यक्तित्व का नाश है। मनुष्य की भतरी शक्ति को दबाकर मृत्यु चिंता से जीवन को धुँधलाना व्यर्थ है। कवि की राय में

---

1 तारसप्तक स अज्ञेय, पृ 20

जीवन के इस गहन अतल में मृत्यु का क्या प्रयोजन है। इसलिए मनुष्य को सभी कष्टों को झेलकर जीने का उपदेश देते है। तुम मृत्यु चिंता छोडो और -

''अंतर्दीपक के प्रकाश में विनत-प्रणत आत्मस्थ रहो तुम,

जीवन के इस गहन अतल के लिए मृत्यु का अर्थ कहो तुम।''[1]

इसमें मृत्यु का अर्थ यह है कि जीवन धारा अनंत है, उसे रोकने में मृत्यु असमर्थ है आगे ये पंक्तियाँ हैः

''इसी अमर धारा के आगे बहने के हित यह सब नश्वर

सृजनशील जीवन के स्वर में गाओ मरण-गीत तुम सुंदर''[2]

बर्गसाँ के अनुसार जीवन संवेग मनुष्य के भीतर से उत्पन्न होता है, किसी भौतिक क्रिया अथवा ईश्वर से नहीं। बर्गसाँ ने संप्रति ईश्वर के स्थान पर अपने जीवन को ही ईश्वर मानते हैं।[3] कवि के शब्दों में

''उसने ईश्वर संहार किया पर निज ईश्वर पर स्नेह किया।

स्फुरणा के लिए स्वयं को ही नव स्फूति स्रोत का ध्येय किया।''[4]

इमर्सन समाज का विरोध करते हैं। उनके अनुसार समाज व्यक्ति के भीतरी गुणों को कुंठित कर उसे यंत्र मानव में बदल देता है। मुक्तिबोध की कविताओं में इन दार्शनिक मान्यताओं का प्रभाव है। 'अशक्त' शीर्षक कविता में उन्होंने बाह्य ज्ञान को कोई महत्व नहीं दिया है और अंदर को मज़बूत करने पर बल दिया है

''जब कि शंकाकूल तृषित मन खोजता

बाहरी मरू में अमल जल - स्रोत है,

---

1 तारसप्तक अज्ञेय पृ 20

2 वही पृ 20

3 मुक्तिबोध, ज्ञान और संवेदना नन्दकिशोर नवल, पृ 172

4 तारसप्तक सं अज्ञेय, पृ 19

क्यों न विद्रोही बने ये प्राण जो

सतत अन्वेषी सदा प्रद्योत हैं?

जब कि अन्दर खोखलापन कीट - सा

है सतत् घर रहा आराम से,

क्यों न जीवन का बृहद अश्वत्थ यह

डर चले तूफान के ही नाम से।''[1]

इमर्सन अहंवाद का विरोध करते है 'नूतन अहं' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध आत्म भर्त्सना के स्वर में कहते हैं-

''अहंभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में

जैसे घूरे पर उट्ठा है

धूष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त''[2]

इस कविता में कवि प्यार, घृणा, ग्लानि, स्नेहकोष आदि से रिक्त मनुष्य के भीतर को गटर से भी अधिक कलुषित मानते है। कुकुमुत्ता यहाँ अहं का प्रतीक है। यह अहं विरोध इसर्सन से प्रेरिता है।

अन्तर्मन की रिक्तता, दीनता और यांत्रिकता पर अपना क्षोभ व्यक्त करनेवाली कविता है 'विहार'

'दिन के बुखार

रात्रि के मृत्यु

के बाद हृदय पुंसत्वहीन,

अंतर्मनुष्य

---

1 तारसप्तक - अज्ञेय पृ 17

वही. 22

रिक्त सा गेह

दो लालटेन-से नयन दीन,''[1]

इमर्सन के अनुसार महान पुरुषों की इतिहास में महान भूमिका है। नैतिक दृष्टि से वे पूर्ण है। सामाजिक प्रगति उनकी नैतिक पूर्णता पर निर्भर है।

इमर्सन ने अहं के घेरे का अतिक्रमण कर विस्तृत जीवन के भागीदार बनने की बात पर जोर दिया है, 'अंतदर्शन' कविता में अपने मे सम्मोहित होने के कारण कवि को अपने से ही हार खाना पड़ता है। फिर उनको प्रायश्चित करना पडता है -

''मेरा मन गलता निज में जब अपने से ही हार खा चुका।

दारुण क्षोभ-अग्नि में अपना प्रायश्चित - प्रसाद पा चुका।।''[2]

## विश्वदृष्टि की खोज

मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताओं मे विश्वदृष्टि आत्मसात् करने का प्रयास है। कवि का सतत् अन्वेषी मन, संघर्ष, मानसिक द्वंद्व और तनाव से भरा है। परिणामतः इन कविताओं में प्रश्नाकुलता अधिक उभरी है। कवि मन की तृषा बुझती ही नहीं। वह बढती रहती है। ''व्यक्तित्व और खंडहर'' कविता में तनाव और द्वंद्व के कारण विकेंन्द्रित व्यक्तित्व की विक्षुब्धता प्रकट हुई है

''दब चुकी जो मर चुकी है आत्मा

खत्म जो हो गयी, आकांक्षा।

आज चढ़ बैठी अचानक, भूत-सी इस कांपते नर पर

---

1 तारसप्तक अज्ञेय, पृ.23

वही पृ.30

विक्षुब्ध कम्बन बन चढ़ी जाती सरल स्वर पर

प्रशन ले कर कठिन उत्तर साथ ले कर,

रात के सिर पर चढ़ी है, नाश का यह गीत बनकर''[1]

कवि तनाव और द्वंद्व से विकेन्द्रित अपने व्यक्तित्व से संपृक्त नहीं। जब वह अपने वर्तमान व्यक्तित्व पर विचार करता है। उस समय अनेक समस्यायें और प्रश्न उनके सामने उपस्थित हो जाते हैं; व्यवस्थित जीवन दर्शन अपनाने की राह की खोज करते समय मुक्तिबोध के भीतर आदर्श भावना और यथार्थ बोध के बीच एक संघर्ष जन्म लेता है जिसकी अभिव्यक्ति उनकी नाटकीय शैली में लिखी गयी 'आत्म संवाद' शीर्षक कविता में हुई है। इसमें कवि आदर्श भावना से प्रेरित है -

''सत्य का मैं ईश और मैं स्वप्न का हूँ परम स्रष्टा

उग्र - द्रष्टा मैं स्वयं हुँ जब कि दुनिया मार्ग भ्रष्टा।'

इसे काटने वाला यथार्थ बोध का स्वर है:

'(किंतू सपने? प्राण की है बुरी हालत

और जर्जर देह, यह है खरी हालत)''[2]

यह आत्मसंघर्ष और आत्म संवाद उनमें अपना रूप बदलता हूआ और अपना विस्तार करता हुआ किसी न किसी रूप में अंत तक विद्यमान है।

## प्रागतिशीलता की ओर उन्मुक्तता

एक व्यवस्थित जीवन दर्शन अपनाने की प्यास शूरू से लेकर सुक्तिबोध में थी। इसी कारण से मुक्तिबोध विभिन्न दर्शनों से प्रेरित होते गये। 1941 मे शुजालपूर मंडी में नेमीच्चन्द्र जैन से मुक्तिबोध का मुलाकात हुई। जिन्होंने उन्हें मार्क्सवाद से परिचित कराकर डॉ. जोशी से मिले बर्गसाँ और इमर्सन के भाववादी दर्शन के प्रभाव से मुक्त किया। तारसप्रकीय वक्तव्य में उन्होंने स्वीकार किया है कि ''1942 के प्रथम और अंतिम चरण में एक ऐसी विरोधी शक्ति के सम्मुख आया, जिसकी प्रतिकूल आलोचना से मुझे बहूत कूछ सीखना था। यहाँ मैने एक साल में पाँच साल का पुराना जडत्व निकालने की सफल और असफल कोशिश की। इस उद्योग केलिए प्रेरणा, विवेक और शांति, मैं ने एक ऐसी जगह से पाई, जिसे पहले मैं विरोधी शक्ति मानता था''[1] विरोधी शक्ति से मतलब है मार्क्सवाद से और उसकी प्रतिकूल आलोचना। 'छायावाद और नयी कविता' शीर्षक लेख में मुक्तिबोध ने स्वीकार किया है कि ''तारसप्तक में संग्रहित कविताएँ सन् 42 के उत्तरार्ध के पूर्व की ही कविताएँ है।''[2] ऐसी परिस्थिति में तारसप्तक की कुछ कविताओं में मार्क्सवाद का प्रभाव होना स्वाभाविक है। इन कविताओं में पूँजीवाद के विरुद्ध क्षोभ के बावजूद व्यक्ति चेतना का ही प्रधान्य है। 'सृजन क्षण' कविता में वे जनता के पक्षघर बनकार उनके बारे में कहते हैं -

''जब कि स्वयं मैं सुज्ञ बना हुँ
अज्ञों का अंतर पा कर ही,
सदा रहूँ उनका चाकर ही
वे कि जिन्होंने आत्म रक्त से मुझको सींचा।
कैसे हँस सकता हूँ मैं उन पर ही।''[3]

---

तारसप्तक अज्ञेय, पृ. 17
मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध, पृ. 312
तारसप्तक अज्ञेय, पृ 27

उन्होंने जनता को अपने विकास का स्रोत माना है। जनता ने अपने आत्म-रक्त के सिंचन से मेरी आत्मा का पोषण किया। मैं उनका उपहास किस प्रकार करूँ। वे अपनी कविताओं में जन से जुड़ने में उद्यत हैं। जन की दुर्बलताएँ उनके लिए प्यारी है। समाज से जुडने की लालसा 'मैं उनका ही होता' कविता में व्यंजित हैं -

''मैं उनका ही होता, जिनसे मैं ने रूप-भाव पाये हैं।

वे मेरे ही हिये बँधे हैं जो मर्यादायें लाये हैं।

मेरे शब्द, भाव उनके हैं,

मेरे पैर और पथ मेरा

मेरा अन्त और अथ मेरा,

ऐसे किंतु चाव उनके हैं।

मैं ऊँचा होता चलता हूँ

उन के ओछेपन से गिर - गिर,

उन के छिछलेपन से खुद-खुद,

मैं गहरा होता चलता हुँ।''[1]

जिनसे मैं ने रूप - भाव पाये हैं, जिनसे मेरा हार्दिक सरोकार है मैं उनका ही होता है। उनके ओछेपन से ऊँचाई की ओर चलता हूँ तथा उनके छिछलेपन से खूद खूदकर मैं गहराई की ओर चलता हुँ। इस प्रकार कवि जनत के द्वारा विकास प्राप्त करना चाहता है क्यों कि जनता ने उन्हें रूप भाव दिये हैं।

मार्क्सवादी दर्शन से प्रेरित होने के पश्चात् जनसाधारण को शोषण से लगी समसामयिक पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध मुक्तिबोध करते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं

---

1 तारसप्तक, सं अज्ञेय, पृ 35

द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था से सामाज को मुक्त करने का राह ढूँढी है। शोषण पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था ही उनकी बेचैनी का मुख्य कारण है 'पूँजीवादी समाज के प्रति' शीर्षक कविता में पूँजीपतियों से क्षुब्ध होकर वे कहते हैं -

''छोडो हाय, केवल घृणा औ दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह शष्द - संस्कृतिं अन्ध''[1]

पूँजीवादी संस्कृति जो बाह्यतः सुंदर दिखलाई पडती है। पूँजीवादी व्यवस्था के सारे तामझाम जैसी उसकी तमाम दिव्यता, भव्यता, शक्ति, बुद्धि, भक्ति, संस्कृति, काव्य, शब्द, छंद आदि के खोखलेपन में निहित शोषणकारी रूप को छिपने का साधन मानते हैं।

''इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति
यह सौदर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर - भक्ति,''[2]

मामूली आदमी अपनी व्यथाओं को मौन रूप से सहन करता है। लेकिन इस खतरनाक व्यवस्था का भीतरी रूप घृणा और दुर्गन्ध से भरा हुआ अन्ध संस्कृति है। जनसंगठन की आकांक्षा से यूक्त होकर मुक्तिबोध अपनी आक्रोश जनता की आक्रोश से मिलाकर उसकी उष्णता से पूँजीपतियों की अविवेक को धोने का स्वप्न देखते हैं -

''मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक''[3]

'एक आत्म वक्तत्य' शीर्षक कविता में व्यावसायिकरण, व्यापारीकरण से उत्पन्न वैषम्य का चित्रण है जो व्यक्ति के भीतरी जगत को भयावह बनाता है। कवि अपनी संवेदना से सामाजिक यथार्थ को उजागर करते हैं। वह भोगे गए कटुतम यथार्थ से

---

1 तारसप्तक से अज्ञेय, पृ 25
2 वही पृ 25
3 वही पृ. 25

वर्तमान और भविष्य की स्थिति का विश्लेषण करता है। कवि की दृष्टि इतिहास बोध के साथ मूलतः मानवीय यातना पर केंद्रित होती है,

''मार काट करती हुई सदियों की चीख;
मूठ भेड करते हुए स्वार्थों के बीच
भोले भोले लोगों के माथों पर घाव।

अँधियाली गलियों में घुमता है
तडके, ही रोज़
कोई मौत का पठान
माँगता है जिंदगी जीने का व्याजः
अनजाना कर्ज
माँगता है चुकारे में, प्राणों का माँस''[1]

कवि की दार्शनिक दृष्टि दुनिया के वैषम्य का मानचित्र देखती है। सत्ता-मोही, धन लिप्सा शक्ति के कुतंत्र को देखती है। इन सब के आगे एक और दृश्य भी कवि देखता है जो जन साधारण के गुप्त संगठन के बीच क्रांति की आग सुलगाता है। उस आग के प्रकाश में संवेदित ज्ञान का भाव सच्चा हो जाता है -

''असंख्यक इत्यादि-जनों का मैं भाग
इसलिए, अनदिखे,
सुलगाता धीरे से आग,
जिसके प्रकाश में तंबियाये चेहरों पर आप

---

1 तारसप्तक सं अज्ञेय, पृ. 40

संवेदित ज्ञान की काँपती ही

उठती है भाफ चुप-चाप''[1]

इसके परिणाम स्वरूप शोषको के यहाँ भारी असंतोष है और जनसाधारण के यहाँ परिपोष है। मुक्तिबोध की सोच में इस व्यवस्था का नाश तुरंत होना अनिवार्य है क्योंकि अतीत के कई दर्शनों ने इस व्यवस्था का धीरे धीरे अंत करने का निश्चय किया था लेकिन वे असफल हो गये। इसलिए पूँजीवाद के विरुद्ध क्रांति का स्वर देनेवाले यह रचनाकार पूँजीवाद सत्ता के तिलस्म को जलदी ही जड से उखाड फेंकना चाहते हैं। उस केलिए वे हिंसात्मक क्राँति के पक्ष में है। इसी कारण वे नाश देवता की वन्दना करते हैं और नाश देवता से अपने सिर पर पैर रखकर तीनों जग नाप लेने का अह्वान करते हैं। उनका विश्वास है बिना संहार के सर्जन असंभव है -

''हे रहस्यमय, ध्वंस - महाप्रभू, जो जीवन के तेज सनातन,

तेरे अग्निकणो से जीवन, तीक्ष्ण बाण से नूतन सर्जन।

हम घुटने पर, नाश देवता! बैठ तूझे करते है वन्दन,

मेरे सिर पर एक पैर रख नाप तीन जग तु असीम बन''[2]

यह नाश देवता और कोई नहीं संगठित जनसाधारण की क्रांति देवता है। मुक्तिबोध की तारसप्रकीय कविताएँ युगीन यथार्थ का सफल दस्तावेज़ है। पूँजीवादी अराजकता से समाज में व्याप्त संत्रास, असुरक्षा, भय आदि तत्वों के दर्शन मुक्तिबोध की कविताओं में होते हैं

''घनी रात बादल रिमझिम है, दिशा मूक, निस्तब्ध वनांतर

व्यापक अंधकार में सिकुडी सोयी नर की बस्ती, भयंकर

---

1 तारसप्तक अज्ञेय पृ 43
तारसप्तक सं अज्ञेय 26

है निस्तब्ध गगन, रोती-सी सरिता-धार चल धहराती,

जीवन-लीला को समाप्त कर मरण-सेज पर है कोई नर।''[1]

व्यवस्था की अमानवीयता से दिपालोकित घर भी धुँधला हो गया। परिवार के सभी सदस्यों की स्थिति दयनीय हो गया है। ''वधू मुर्च्छिता, पिता अर्ध-मृत, दुखिता माता स्पन्दन हीना''[2] व्यवस्था की अमानवीयता का परिणाम परिवार के सदस्य भी अनुभव करते हैं। पूँजीवादी ढाँचे में निर्मित हमारे समाज मे गुलामी का जुआ कंधे पर उठाए भूख और युद्ध की विभीषिका से गुज़रने वाले व्यक्ति की संख्या ज्यादा है।

मुक्तिबोध समसामयिकता से सजग थे। पुँजीपतियो के विकास के साथ द्वितीय विखयुद्ध तथा स्वतंत्रता आंदोलन व्यक्ति की परवर्तित मानसिकता का कारण था। मुक्तिबोध इस बदले हूए संदर्भ के प्रति सजग थे। इस युग का व्यक्तित्व असंतोष तथा आत्म वंचना से पीडित था। यूग के व्यक्तित्व के दर्शन 'अंतदर्शन' कविता में प्रप्त है

''मेरा जग से द्रोह हुआ पर मैं अपने से ही विद्रोही।

गहरे असन्तोष की ज्वाला सुलग जलाती है मुझको ही।।''[3]

असंतोष से पीडीत व्यक्ति अपने से ही विद्रोही हो जाता है। वह निराशा और मृत्यु की अभिलाषा से वह अपने मन के भीतर की शांति छीन लेता है। आज विवशता, मालिन्य और आँसु उसके सहचर हैं। मनुष्य से मानवता नष्ट हो जाता है। मनुष्य मानवता का कटु आलोचक हो जाता है। कवि एसे व्यक्तित्व की तलाश करते हैं जो स्वयं युग सत्य हो। वह अपने आप में सफल असफल, विजय, अविजय होते हुए भी विकल प्राण और जर्जर देह होता है। युगीन परिवर्तन की पहुचान आधुनिकता बोध की चेतना है।

---

1 तारसप्तक सं अज्ञेय पृ 20

वही पृ. 20

पुंसत्वयुक्त महामानव का संकल्प हर दिन के लिए नष्ट हो रहा है। इसके स्थान पर आज ''पुंसात्वहीन नर विलास'' हो रहा है। इस तरह परंपरागत मूल्य परिवर्तित होती जा रहे हैं। मनुष्य पूँजीवादियों की अमित वासना के शिकार हो रहे हैं। दिन के बुखार और रात्री की मृत्यु के बाद हृदय दुःख का नरक हो गया है। इस प्रकार पुँजीवादी समाज में मनुष्य के स्वत्व का विघटन भी हो गया है। आज के मानव पुर्ण रूप से अनिश्चय की स्थिति में है-

''पान्थ है प्यासा, थका - सा धूप में
पीठ पर है ज्ञान की गठरी बडी
झूक रही है पीठ, बढता बोझ है
यह रही बोगार की यात्रा कड़ी।''[1]

पथिक धूप में थका-प्यासा है। ज्ञान का बांझ उस पर है पर बह अपने लक्ष्य को स्थिर नहीं कर पा रहा। इस कारण मनुष्य में एक संदेह और डर की स्थिति उत्पन्न होती है। आज के मध्यवर्ग के सामनें यह कविता प्रासंगिक भी है।

## मुक्तिबोध की तार सप्तकीय कविताओं की शिल्प संरचना

शिल्प की दृष्टि से भी तार सप्तकीय कवियों में मुक्तिबोध अलग दीखते हैं। उनकी कविताएँ आकार में छोटी है। बाद की लंबी कविताओं से अलग पृथकता भी रखती है। संघर्ष की तीव्रता भी इनमें परवर्ती कविताओं की अपेक्षा कम है। ''बात सीधा

---

३ तारसप्तक सं अज्ञेय, पृ 30
१ तारसप्तक सं अज्ञेय, पृ. 17

न कहकर सूचित करने की रमाशंकर शुक्ल की शैली''[1] का इस्तेमाल इन कविताओं की विशेषता है। अपने काव्य संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति वे विभन्न शैलियों के सहारे करते हैं। कहीं उन्होंने बात स्वयं से कहने की आत्म कथात्मक शैली को अपनाया है

'मैं उनका ही होता' शीर्षक कविता में जन से जुडने की अपनी प्रतिबद्धता कवि स्वयं ,से कहती हैं-

''मैं उनका ही होता, जिन से मैं ने रूप भाव पाये है

वे मेरे ही हिये बँधे हैं जो मर्यादाएँ लाये हैं।''[2]

तो कहीं विचारों को दूसरों से कहने का एक ढंग अपनाते हैं- 'नूनन अहं' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ देखिए -

''तेरी इस दयनीय दशा का लघुतामय संसार

अहंभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में

जैसे धूरे पर उट्ठा है

धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त''[3]

कभी उनकी कविताओं में एक नाटकीयता भी आ जाती है। उदाहरण केलिए 'आत्म-संवाद' कविता

''मैं महाशोधक महाशय सत्य-जल का मीन हूँ मैं

सत्य का मैं ईश और मैं स्वप्न का हूँ परम स्रष्टा

(किंतु सपने? प्राण की है बुरी हालत

और जर्जर देह, यह है खरी हालत)''[4]

---

1 तारसप्तक अज्ञेय 5
तारसप्तक अज्ञेय पृ 35
3 वही पृ 22
4 वही. पृ 32

और को भी वर्णनात्मक शौली को अपनाया गया है। उदाहरण के लिए 'मृत्यु और कवि' शीर्षक कविता में परिवेशगत प्रभाव से मनुष्य में उन्पन्न मृत्यु चिंता का चित्रण के लिए वर्णनात्मक शैली अपनाया है

''घनी रात, बादल रिमझिम हैं; दिशा मूक, निस्तब्ध वनांतर

व्यापक अंधकार में सिकुडी सोयी नर की बस्ती, भयंकर

है निस्तब्ध गगन, रोती - सी सरिता - धार चली धहराती,

जीवन लीला को समाप्त कर मरण-सेज पर है कोई नर''[1]

कवि ने यहाँ वर्णनामक शैली के सहारे परिवेश की अमानवीयता से निस्तब्ध भयानक वातावरण का निर्माण किया है।

''रवि का प्रकाश,

शशि का विकास -

पुंसत्वहीन नर का विलास।''[2]

अपने परिवेश की या दुस्थिति की चिंता न कर पुंसत्वहीन होकर विलास करने वाले नर के अनुरूप प्रकृति भी खडी है।

इन कविताओं में मुक्तिबोध ने प्रतीकों का इस्तेमाल अवश्य किया है। बाद की कवितओं में मौजूद प्रतीक इसके विकसित रूप हैं। सत् चित् वेदना के प्रतीक इसमें अधिक है। उदाहरण के लिए आलोक, बालक, सूर्य जैसे प्रतीकों माध्यम से मनुष्य में स्थित सत भावना या भलाई को अभिव्यक्ति दी है।

'मृत्यु और कवि' शीर्षक कविता में मनुष्य के भीतर की भलाई को सुचित करने के लिए आलोक प्रतीक का इस्तेमाल किया गया है।

---

1 तारसप्तक अज्ञेय पृ 20

वही. पृ 23

''बहूत संकुचित छोटा घर है,

दिपालोकित फिर भी धूँधला''[1]

यह आलोक बाद की कविताओं में भी मनुष्य की सच्चाई का प्रतीक बनकर आती है। 'बालक' मुक्तिबोध का एक इष्ट प्रतीक है 'आत्मा के मित्र मेरे' कविता में सत्य की आत्मा रूपी नग्न बालक का चित्रण है -

'दो आत्मायें

बालकों सी नग्न होकर खडी रहती'[2]

इस प्रकार के प्रतीक 'खोल आंखें' कविता की सत्य शिशु के रूप में साक्षात्कृत होते हैं। सूर्य को भी उन्होंने प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया है जो सच्चाई का प्रतिरूप है। 'बरगद' मुक्तिबोध का इष्ट प्रतीक है जो बाद की कविताओं में बार-बार आता है। यह मानव के निस्तब्ध मन का प्रतीक है। 'आत्मा के मित्र मेरे' कविता में बरगद प्रतीक रूप में आते हैं -

''मृदु स्पर्श कर पहचात करती, गूढतम उस विशद

दीर्घच्छाय श्यामल काय बरगद वृक्ष''[3]

मुक्तिबोध की तारसप्रकीय कविताओ में उन्होंने प्रायः सरल भाषा का इस्तेमाल किया है, किंतु लक्षणिक शैली का इस्तेमाल भी कविताओं में हुआ है। इन कविताओं की शब्दावली हिन्दी और संस्कृत मिश्रित है। लेकिन आगे की कविताओं में वे आरबी, फारसी, मराठी की शष्दावलियों तथा फैंटसी से जटिल और खुरदरा शिल्प अपनाते हैं। ये कविताएँ फैटेसी शिल्प पर निर्मित नहीं है। लेकिन इनमें फैटेसी के बीज उपलब्ध हैं। उनकी आगे की तमाम साहित्यिक कृतियों की भाषा तारसप्रकीय काव्य भाषा का विकसित

---

1 तारसप्तक सं अज्ञेय, पृ 20
तारसप्तक अज्ञेय, पृ. 10
तारसप्तक स अज्ञेय पृ. 10

रूप है। अरविंद पांडेय के शब्दों में ''मुक्तिबोध की भाषा प्रौढता संरचनात्मकता, संप्रेषण की शक्ति सभी रचनाओं में देखी जा सकती है।''[1]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की तारसप्तकीय कविताएँ आंरभिक दौर की कविताएँ होते हूए भी मुक्तिबोध के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप से युक्त हैं। ये कविताएँ मुक्तिबोध के काव्य विकास का पहला चरण है। यह पहला चरण अपरिपक्वता का नहीं है बल्कि परिपक्वता का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

---

1 सप्तक काव्य अरविंद पांडेय, पृ 45

अध्याय तीन

# मुक्तिबोध की कविता में व्यवस्था-विरोध

## मुक्तिबोध की कविताओं की मनोभूमि

मुक्तिबोध की कविताओं के दोनों संकलन उनकी मृत्यु के उपरांत ही प्रकाशित हुए। पहला संकलन 'चांद का मुँह टेढा है' जो सन् 1964 में उनकी मृत्यु के तुरंत बाद श्रीकांत वर्मा, शमशेर आदि के सहयोग से प्रकाशित हुआ। इसमें 28 कविताएँ शामिल हैं। दूसरा संकलन का प्रकाशन सन् 1980 में 'भूरी भूरी खाक धूल' नाम से किया। इसमें 47 कविताएँ शामिल हैं। तारसप्तक में मुक्तिबोध का जो कवि रूप है उससे भिन्न है इस संकलन में उनका कवि रूप। यह तब्दीली उनकी काव्य-यात्रा का द्वितीय सोपान माना जा सकता है। इस काल में मुक्तिबोध भाववादी इन्द्रजाल से बाहर निकल चुके थे। वे मार्क्सवादी कर्मक्षेत्र में पदप रहे थे, अर्थात् वे सिद्धान्त और व्यवहार में मार्क्सवादी बन गये थे। इन कविताओं में कवि गहराइयों में पैठते चले जाते हैं और संदर्भों की समझ भी गहरी होती जाती है। जीवन-सत्यों के परदे यहाँ खुलते हैं। आत्मसंघर्ष की तीव्रता भी इन कविताओं में है। इस संदभं में उन्होंने अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति की अनेकानेक पद्धतियों, सूत्रों, शिल्पपरक कलाविधियों और सौन्दर्यवत्ता के समर्थक पथ अपनाये।

उनकी अधिकांश कविताएँ लंबी है, लेकिन परंपरागत लंबी कविताओं से ये भिन्न हैं। काव्यगत यथार्थ को पूर्ण अभिव्यक्ति देने के प्रयास में ये कविताएँ स्वतः लंबी हो जाती है। इन कविताओं की विशेषता यह है कि सामने दीखनेवाली दुनिया की बाहरी रूपाकृति के समान ही भीतरी दुनिया की चित्र बडे नाटकीय ढंग से पूरी कलात्मकता के साथ उभरा है। इस प्रकार उनकी कविता हमारे भीतर की जिंदगी की जटिलता का एहसास जगाती है। इस बीहडपन से मनुष्य को मुक्त करने केलिए मानव की असलियत

को पेशकर आदमी को सजग करती है, परिचित कराती है, उस परिवेश से, जिसमें वह घिरा हुआ है।

आत्म चेतना की खोज से संघर्ष केलिए ऊर्जा प्राप्त करना इन कविताओं का लक्ष्य है। 'अंधेरे में' 'इस नगरी में' 'ब्रह्म राक्षस' 'भविष्य धारा' 'चंपल की घाटी में' 'जिन्दगी का रास्ता' आदि कविताएँ उनके इस प्रयास के सफल परिणाम हैं। बच्चन सिंह के शब्दों में ''मुक्तिबोध आत्म मंथन के कवि हैं। इस मंथन में कालकूट भी निकलता है अमृत भी। कालकूट वह स्वयं पीते हैं और अमृत दूसरों को बाँटते हैं। इस मंथन में उनका आत्मलोचन, सभ्यता समीक्षा, आधुनिक बोध, रचना प्रक्रिया, मानवीय अभिप्राय, क्रांतिकारी परिवर्तन आदि सभी कुछ सम्मिलित हैं। किसी एक कविता को उठा लीजिए इसमें यह सब कुछ मिलेगा किसी में एक तत्व प्रधान है तो किसी में कुछ। इसलिए कहा जाता है कि उन्होंने समग्रतः एक ही कविता लिखी है - अनेक कविताओं को मिलाकर भी एक कविता।''[1] उनकी यह एकमात्र कविता जीवन के स्वप्न से युक्त है, जीवन शक्ति का ओतप्रोत है, जीवनोन्मुखता से भरी पडी है।

## विश्व दृष्टि से अनुप्राणित काव्य जीवन

अपनी कविताओं के रचनाकाल में मुक्तिबोध व्यवस्थित जीवन दर्शन अर्थात मार्क्सवादी विश्वदृष्टि स्वीकार किये जा चुके थे। मार्क्सवाद को अपनाने के बाद उन्होंने व्यक्ति केंद्रित दर्शनों का विरोध करना शुरू किया। इसके अतिरिक्त इस दौर में नयी कविता में प्रगतिवादी धारा के साथ एक व्यक्ति केंद्रित धारा भी विकसित हो रही थी।

---

1 हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास बच्चन सिंह, पृ. 462

प्रगतिवाद के शीर्ष स्तंभ मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं द्वारा उस व्यक्ति-केंद्रित दर्शन का घोर विरोध किया। 'मालव निर्झर की झर झर कंचन रेखा' शीर्षक कविता में कवि कहते हैं -

''अत्यंत विराट उपस्थितियों के सम्मुख कर
जन मानव को लघु अल्प बनाना चाहा था
जिन लोगों ने
अथवा आभ्यंतर मन की अक्षमताओं विकृतियों के सम्मुख कर
जन मानव को संक्षिप्त बनाना चाहा था
जिन लोगों ने''[1]

जन मानव को लघुमानव बनानेवाला तथा आभ्यंतर मन की अक्षमताओं या विकृतियों के सम्मुख कर जनमानव को संक्षिप्त बनानेवाले जीवन दर्शन का विरोध बहुत ही कविताओं में कवि करते हैं। आडंभरग्रस्त जीवन के सुनहले मैदान की छोर के पीछे भागनेवाले शोषित, पीडित आम जनता की ज़िन्दगी ही कवि केलिए महान है। उनके पैरों जांघों में बिजलियाँ जौसी क्षमता संपन्न गरम सुनहला खून बहता है। वह जीवन गहरा है ऊँचा है, प्यासा है।

मुक्तिबोध का जीवन काल अपने देश में पूँजीवाद का विकास और सामंतवाद के ह्रास का युग था। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद के पतन के साथ पूँजीवाद का ह्रास भी शुरू हो गया था और उसके अंतर्विरोधों के फलस्वरूप समाजवादी व्यवस्था अस्तित्व में आ गई थी। मुक्तिबोध समानता पर आधारित एक व्यवस्था की अभिलाषी थे। स्वभावतः

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ 108

उन्होंने पूँजीवादी सामंतवाद का विरोध और समाजवादी समाज-स्थापन के उनके आग्रह को कविताओं में प्रतिफलित किया है। यही उनकी कविताओं का प्राण है।

''जो दिव्य चिरंतन अनंत अब तक कहलाता

युगानयुग से तना हुआ

कोमल उदार आकाश

मनोहर व्यापक स्वप्न

अरे कागज़ छत-सा

वह आकस्मात भभका

जल उठा किसी दुर्घटना से

यह दुर्घटना क्या है, क्या है।''[1]

साम्राज्यवादी पतन के साथ व्यक्तिकेंद्रित आत्मग्रस्त स्वार्थता और निराशा से पीडित पूँजीवादी समाज का उदय और उस व्यवस्था में व्यक्ति के स्वभाव का उज्ज्वल चित्रन भी करते हैं -

''हम को अपना धूरा प्रिय है

निज के ऊँचे कचरे के ढेर-शीश पर ही

जीना मर जाना ही श्रेयस्कर

धूरे का घर घर का घूरा

अपना अपना सब को प्रिय है

बस उसी हमारी रक्षा में निज रक्षा है''[2]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध पृ 38 39

2 वही पृ 40

अमानवीय यांत्रिक व्यवस्था से उत्पन्न पीडा और दुःख के समाज से मुक्त करने के प्यास के बजाय उस दुःख और पीडा को सहन कर वेदना रूपी कचरे के ढेर से अपने को ढंककर जीना और मर जाना ही वे श्रेयस्कर मानते हैं। अपनी अभिलाषा की पूर्ति वे उसमें पहचानते हैं। इसलिए पूँजीवादी व्यवस्था में आदमी बिलकुल आत्मग्रस्त होकर दुःख को स्वयं झेलकर उसमें लगे रहने में निज रक्षा समझते हैं। उससे मुक्त होना नहीं चाहते हैं।

वे अपने लेखों और कविताओं में भाववादी दर्शन पर भी कठोर चोट देने लगे। इस दर्शन में आत्मा को ईश्वर का अंश या अलौकिक वस्तु मानी गयी है। 'एक अरूप शून्य के प्रति' शीर्षक प्रसिद्ध कविता में कवि ने धर्म, ईश्वर और आत्मा की बहुत तीखी आलोचना की है। इसलिए वे ईश्वर को लक्ष्य कर कहते हैं -

''मात्र अनस्तित्व का इतना बडा अस्तित्व
ऐसे चुप्प अंधेरे का इतना तेज़ उजाला,''[1]

वे आत्मा के संपूर्ण धार्मिक और दार्शनिक प्रभामंडल को ध्वस्त करते हैं और प्रतिपल ईश्वर का नाम जपते हुए स्वार्थ पहाडी ढाल पर हाँफते हुए बैठनेवाले आत्मा की कुत्तिया की तीखी आलोचना करते हैं -

''देखो तो -
प्रतिपल तुम्हारा ही नाम जपती हुई
लार टपकाती हुई आत्मा की कुत्तिया
स्वार्थ-सफलता के पहाडी ढाल पर
चढती है हाँफती,''[2]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध पृ 189
2 वही पृ 189

तुम्हारी नीति बडी प्यारी है स्वर्ग के पुल पर तुम्हें पूजकर चुंगी के नाकेदार, भ्रष्टाचारी मजिस्ट्रेट रिश्वतरवोर थानेदार खडा है। कवि आगे कहते हैं। निज को संवारने तथा स्वयं को पूर्ण करने की महान विशेषताएँ तू ने मेरे सब जनों को आधार ली है। कविता के अंत में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि उनकी चिंता का विषय जनता है, उसका त्रास, उसका जख्म, उसकी पीडा, उसका अभाव, उसकी चिंता और उसका 'लाल-लाल सुनहला आवेश' यानी उसकी क्रांतिकारी भावनाएँ। उनकेलिए उनका देश ही प्रिय है, कोई कल्पित लोक नहीं। उनके पास जिन्दगी के दल-दल कीचड में धँसकर वक्ष तक पानी में फँसकर प्राप्त किया हुआ विवेक का ज्वलंत सरसिज है। वे किसी अयथार्थ अनुभूति के चक्कर में नहीं पड सकते। अंत में वे परमात्मा से खुलकर कहते हैं कि ''मुझे तेरी ज़रूरत बिलकुल नहीं है।''[1]

**संवेदना के धरातल पर मार्क्सवाद की स्वीकृति**

मुक्तिबोध अपनी ज़िन्दगी भर मार्क्सवादी आदर्शों के साक्षात्कार में लगे रहे। इसी साक्षात्कार का आलोक उनकी कविता में प्रतिफलित है। जन-साधारण के प्रति सहानुभूति, शोषक वर्ग के प्रति क्षोभ, श्रमिकों व पीडितों के सूखे अधरों केलिए सहानुभूति का जल, पूँजीवादी व्यवस्था का भर्त्सना, वर्गरहित समाज की आकर्षक कल्पना प्रतिबद्धता, सामाजिक क्रांति की पुकार आदि मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित तत्व उनकी कविताओं में लक्षित हैं। 'मेरे सहचर मित्र' कविता में मुक्तिबोध कहते हैं कि उनको मार्क्सवाद का ज्ञान अपने मित्र से मिला। उससे उनका हृदय आत्मसाक्षात्कार की भावना

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 191

से लहराने लगा। अपने मित्र के प्रति उनका मन कृतज्ञता से भर उठा। इस भाव को उन्होंने अपनी कविता में अभिव्यक्त किया। इस कविता में कवि ने अपने मित्र के प्रति कृतज्ञता भाव प्रकट किया है उसने मार्क्सवाद का ज्ञान प्रदान कर उन्हें सिनिक, संशयवादी होने से बचाया -

''खूँखार, सिनिक संशयवादी
शायद मैं कहीं न हो जाऊँ
इसलिए बुद्धि के हाथों - पैरों की बेडी
जंजीरे खनका कर तोडी
तुमने निर्दय औजारों से''[1]

इससे समझा जा सकता है कि अपनी पूर्वधारणाओं और पूर्वाग्रहों से किस तरह लडते हुए और लहुलुहान होते हुए मुक्तिबोध मार्क्सवादी दर्शन तक पहुँचे थे। उनके मित्र की विशेषता यह थी कि यह दर्शन उनके लिए मात्र किताबी न था। उन्होंने उसे अनुभव की प्रक्रिया से गुज़रकर ही प्राप्त किया था। जिससे वह उनके जख्म को ठीक करने में सहायक रहे। इस कविता में मुक्तिबोध ने अपने मित्र को संबोधित करते हुए यह भी कहा है कि उसने उन्हें जो ज्ञान की शिक्षा दी; उसे उसने अपनी विक्षुब्ध जिंदगी की वैज्ञानिक प्रयोगशाला में श्रमपूर्वक स्वयं तैयार किया था। इस तरह मार्क्सवाद को ज्ञान और संवेदना के धरातल पर स्वीकार करने वाले इस कवि ने अपनी कविताओं में इन दोनों तत्वों को जीवनानुभवों के तुले पर तौल लिया है।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो पृ 251

**वर्ग वैषम्य का दर्द**

मार्क्सवादी आदर्शों में विश्वास रखनेवाले कवि समानता पर आधारित समाज स्थापन के अभिलाषी हैं। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच की खाई कवि के मन में गहरा क्षोभ उत्पन्न करती है। शोषित पीडित वर्ग के दर्द के कारण यह वर्ग वैषम्य है। इन सब के पीछे आज की पूँजीवादी व्यवस्था हैं। 'मैं तुम लोगों से दूर हूँ' कविता में यह भाव विद्यमान है -

''रेफ्रिजरेटरों, विटैमिनों, रेडियोग्रैमों के बाहर की
गतियों की दुनिया में
मेरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शून्यों में''[1]

आर्थिक वैषम्य को व्यक्त करनेवाली इस कविता में एक ओर रेफ्रिजरेटरों, विटैमिनों, रेडियोग्रैमों की संपन्नता में डूबा हुआ उच्चवर्ग है तो दूसरी ओर भूखी बच्ची मुनिया है। भूख और गरीबी के दर्द भरे जन सामान्य की जिन्दगी में अभाव से युक्त पीडा ही सत्य है शेष सब अयथार्थ मिथ्या है भ्रम है। इस कविता में उन्होंने इस वर्ग वैषम्य को मिटाने का उपाय के बारे में कहते है ''पूरी दुनिया साफ करने केलिए मेहतर चाहिए।''[2]

मुक्तिबोध अपने को सदैव निम्न मध्यवर्गियों के साथ जोडते दिखाई पडते हैं। 'गुंथे तुमसे बिंधे तुमसे' शीर्षक कविता में कवि, निम्नवर्गीय श्रमिकों से वैचारिक एकता स्थापित करते हैं -

''वेदना में हम विचारों की
गूँथे तुमसे
बिंधे तुमसे

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 219
2 वही पृ 219

व आवेष्टित परस्पर हो गये।।''[1]

'हर चीज जब अपनी' शीर्षक कविता में कवि श्रमजीवियों से अपनी आत्मीयता प्रकट करते हैं -

''उनके साथ मेरी पटरी बैठती है

उनके साथ

हाँ उन्हीं के साथ

मेरी बिजली भरी ठठरी लेटती है''[2]

शायद श्रमजीवियों के साथ जोडना बडी भूल होगी क्योंकि उन्हीं के साथ जोडना अपनी कीर्ति और प्रगति केलिए बाधक हो सकता है। ''लेकिन मेरी गरीब दुनिया उन्ही के बदनसीब हाथों से चलती है।''[3] इसलिए कवि की पटरी उन लोगों के साथ है जो ''बराबरी का हक या बराबरी की दावा, नहीं तो, मूड भेड और धावा''[4] के सिद्धांत पर विश्वास पर काम करनेवाले लोगों पर है।

मुक्तिबोध ने कई कविताओं में जनसाधारण के प्रति करुणा भाव प्रकट करते हैं। साथ ही समानता पर आधारित शोषण रहित समाज की भविष्य-विजय की संकल्पना भी करते हैं। 'मेरे युवजन मेरे परिजन' कविता में जनसाधारण से करुणा भाव प्रकट करते हुए दिखाई पडते है - इस कविता में शोषित जनसाधारण या मैदान हवाओं से परिचालित युवजन क्षिप्रा का संवेदन जल पी रहे है -

''उन एकान्तों में क्षिप्रा का

संवेदन जल पी रहे

---

1 भूरी खाख धूल मुक्तिबोध पृ 34

2 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध. पृ. 91

3 वही पृ 91

4 वही पृ 91

अंधेरे में

मेरे युवजन

मैदान-हवाओं में लिपटे''[1]

कविता के अंत में कवि जनसाधारण की आगामी विजय की संकल्पना भी करते हैं-

''इस रात्री-श्यामला वेला में

आगामी प्रातों की ओस सुगन्धित है[2]

मुक्तिबोध की संवेदनशीलता जनसाधारण की शोषणग्रस्त ज़िन्दगी को पहचानने में तत्पर है और उनका पूरा विश्वास है कि जनसाधारण के गरम खून में इस शोषण के खिलाफ लडने की क्षमता है। इसलिए आगामी प्रभात में उनके विजय के सुगन्धित ओस कण दिखाई पडेंगे। 'ओ काव्यात्मन फणीधर' कविता में श्रमिक वर्ग के प्रति मुक्तिबोध का मन आर्द्र संवेदना से भरित है और प्रकृति भी जनसाधारण के श्रम से उत्पन्न पसीने से अपना प्यास बुझाती है -

''रात का समय वह गाँव और औंदुबर,

गहरा सा एक स्याह धब्बा!

उसके तल में श्रमिक-प्रपा,

अंजली से जन पीनेवाले

तृषितों के मुख-विगलित जल से

है भूमि आर्द्र-कोमल अब तक!''[3]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल. मुक्तिबोध. पृ. 77

2 वही पृ 79

3 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध. पृ. 191

यहाँ अंजुली से जल पीनेवेला श्रमिकों के मुँह से गिरे जल से भूमि आर्द्र और कोमल हो उठती है। इस कविता में मज़दूरों के प्रति आर्द्र कोमल भावना को कवि सशक्त ढंग से प्रकट करते हैं।

**पूँजीवाद का विरोध**

मार्क्सवाद को अपनाने के बाद मुक्तिबोध का ध्यान पूर्णतः युगीन व्यवस्था पर पडा। साम्राज्यवाद के ह्रास का वह युग पूँजीवादी व्यवस्था का स्वर्णयुग था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की औद्योगिक उन्नती को लक्ष्य कर हमारे देश में विकसित किये गये कार्यक्रम भी पूँजीवादी के अनुकूल ही थे। पूँजीवादी व्यवस्था की आगामी खतरों की पहचान में सफल बौद्धिक साहित्यकारों ने अपने जीवन और साहित्य में इस पूँजीवादी व्यवस्था का घोर विरोध किया। देश में असमानता लानेवाली यह व्यवस्था ईमान्दार जनसाधारण केलिए एक अभिशाप है। देश की बुद्धिजीवियों की ताकत को हनन करनेवाली यह व्यवस्था मात्र पूँजीपति शोषकों केलिए अभिकाम्य रहा। इस अमानवीय व्यवस्था में हर मनुष्य को किसी न किसी प्रकार फँसना पडता है।

मुक्तिबोध की बहुत ही कविताओं में सत्तामोही पूँजीपतियों का चित्रण है। 'लकडी का बना रावण' कविता पूँजीपति रावण की अवधारणा पर केन्द्रित है -

''उस शैल-शिखर पर
खडा हुआ दीखता है एक द्यौ पिता भव्य
निःसंग
ध्यान - मग्न ब्रह्म.....
मैं ही वह विराट पुरुष हूँ

सर्व तंत्र, स्वतंत्र, सत्-चित!''[1]

पूँजीपति रावण अपने को सत्ता के शिखर पर खडा हुआ ध्यान मग्न ब्रह्म या विराट पुरुष मानता है। उसके विराट कंधों पर रवि-चन्द-तारा विराजमान हैं। उस पर्वत शिखर पर खडे होकर देखते समय उसे जनसाधारण शून्य, अनाम, अरूप, अनाकार, असीम कुहरा लगते हैं। पूँजीवादी समाज में जनसाधारण की जिन्दगी का मूल्य नहीं।

''दीखता
त्रिकोण इस पर्वत-शिखर से
अनाम, अरूप और अनाकार
असीम एक कुहरा,

आकस्मात्
दोनों हम
मैं व शून्य''[2]

''पर कविता के अन्त में उनके बढ़ आने और द्यौ पुरुष पर छा जाने का वर्णन है। यहाँ पूँजीपति वर्ग पर सर्वहारा के आधिपत्य को दर्शाया गया है-

''अरे, अरे!
नभचुम्बी शिखरों पर हमारे
बढ़ते ही जा रहे
जा रहे चढ़ते
हाय, हाय,

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो. मुक्तिबोध. पृ 368
2 मुक्तिबोध रचनावली दो- मुक्तिबोध. पृ. 368-69

सब ओर घिरा हूँ।

सब तरफ़ अकेला,

शिखर पर खड़ा हूँ

लक्ष-मुख दानव-सा, लक्ष-हस्त देव-सा।

परन्तु, यह क्या

आत्म-प्रतीति भी धोखा ही दे रही!!

स्वयं को ही लगता हूँ

बाँस के व कागज़ के पुट्ठे के बने हुए

महाकाय रावण-सा हास्यास्पद

भयंकर!!''[1]

यह मुक्तिबोध की आदर्शलक्षी कविता है।

'भूल गलती' शीर्षक कविता में सत्ताधारी पूँजीपति का प्रतीक व असत्य का प्रतिरूप भूल गलती जिरहबख्तर पहन कर दिल के तख्त पर बैठा है। सामने वह सत्य का प्रतिरूप व सत्वृत्तियों का नमूना इमान को कैद कर लाया है। उनके चेहरे पर घावों के लकीरें प्रकट है जिन जिन अत्याचारों एवं यातनाओं को उसने भोगा है उन सबके दाग ईमान के चेहरे पर है। उसके समूचे शरीर में फटे पुराने वस्त्र है उस वस्त्र पर भी खून के दाग है। फिर भी वह निर्भय होकर सत्ता के सामने चुनौती देकर हिम्मत के साथ नीली बिजलियाँ फेंकते हुए सुलतानी निगाहों में निगाह डालकर खामोश होकर खडा है।

''सामने

बैचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो- मुक्तिबोध. पृ. 371

चेहरा

कि जिस पर काँप

दिल की भाफ उठती है

पहने हथकडी वह एक ऊँचा कद,

समूचे जिस्म पर लतर

झलकते लाल लंबे दाग़

बहते खून के।

वह कैद कर लाया गया ईमान

सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता,

बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता

खामोश!!''[1]

जिन्दगी की सुविधा केलिए किसी न किसी प्रकार का समझौता उनकेलिए स्वीकार्य नहीं। पूँजीपतियों के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने केलिए ईमान के साथ कोई नहीं आवाज उठाते तो वह भी बिल्कुल अकेला है। इस व्यवस्था में कोई भी अत्याचार के खिलाफ नहीं है। ईमान की तरह कैद होता जाएगा। कविता में आगे कहते है

''भूल (आलमगीर)

मेरी अपनी कमजोरियों के स्याह

लोहे का जिरहबख्तर पहन खूंख्वार

हाँ, खूंख्वार आलिज़ाह,

वो आँखें सचाई की निकाले डालता,

---

[1] गुक्तिबोध रचनावली दो- मुक्तिबोध, पृ. 390

सब बस्तियाँ दिल की उजाडे डालता,

करता हमें वह घेर,

बेबुनियाद, बेसिर-पैर

हम सब कैद है उसके चमकते ताम झाम में

शाही मुकाम में!!''[1]

आम जनता की कमजोरियों के लोहे का काला जिरबख्तर वह पहनता है और उनका खून वह पीता है। इस दुनिया में अत्याचार के खिलाफ अगर कोई है तो उसका उन्मूलन वह करता है। सचाई की आँखें वह उखाडता है। पूँजीवादी शोषकों के चमकते बाहरी ताम-झाम में उसके शाही मुकाम में आम जनता कैद है। इस शोषक व्यवस्था के अंतर्गत हम एक ढहे हुए मकान के नीचे दबे हैं।[2] कवि की यही आशा है कि मिट्टी के अंधेरे इतिहास में हमारा बिना कीर्ति का बेनाम चिह्न रह जाएगा।

मुक्तिबोध की कविताओं की सार्थकता इसमें है कि उनकी कविताओं में बाहरी जगत से आभ्यंतर जगत की ओर या आभ्यंतर जगत से बाहरी जगत की ओर जाने की, ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान की एक प्रक्रिया निरंतर जारी है। 'भूल गलती' नामक इस कविता भी हमें बाहरी जगत से आभ्यंतर जगत की ओर ले जाती है। हमारे मस्तिष्क के भीतर कई परतें हैं। इनमे से एक परत हमारी भ्रष्ट वासनाओं का प्रतीक सुलतान रहता है। वह हमारे दिल की सचाई की परत को दमित कर या कैदकर, सचाई की आँखें निकालकर हमारे दिल के और सब बस्तियों को उजाडकर दिल की बस्तियों की कमजोरियों को खूब इस्तेमाल कर उसी ताम-झाम में हमारे दिल के तख्त पर सुलतान बनकर शासन करता है।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध. पृ 391

2 वही पृ 134

'हर चीज़ जब अपनी' शीर्षक कविता में पूँजीवादी प्रभाव का सशक्त वर्णन है। पूँजीवादी संस्कृति समाज को स्वार्थ प्रेरित, आत्मग्रस्त बल डालती है। हमारे संबंध यांत्रिक होते जाते हैं। औपचारिकता के हम वशीभूत होते हैं।

पहचाने ज़रा सी छूती हैं

उड जाती हैं

दिल में बस नहीं पाती।

यही कारण है कि रेत के ढेर सी दिखती है

तो किसी को यह दुनिया

पके हुए बेर सी दिखती है

कि जिसको वह तोडे और खा जाय

तो किसी का वह लहँगे के घेर-सी

कि जिसमें वह बैठे और समा जाय,

तो किसी को वह रीछ सी भालू सी

किसी को कछू-सी आलू -सी,''[1]

स्वार्थग्रस्त विकृति से भरे समाज का यह बहुत ही सटीक और सशक्त वर्णन है। 'ओ अप्रस्तुत श्रोता' शीर्षक कविता में पूँजीवादी सभ्यता को एक अंधेरे कारखाने के रूप में चित्रित कर पूँजीवादी व्यवस्था में होनेवाले व्यक्ति-रूपांतरण का वर्णन किया गया है

''हाँ अंधेर कारखाना यह

जिसकी लाल भडक बेताब धमन भट्टी में

झोंक खुद ही को रोज़

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ. 87

आत्महत्या करता है व्यक्ति

किंतु वह मरता नहीं

वरन वह पुनर्जन्म पा

विकसित करता नया एक दम नया

पेट घड सींग पूँछ और पंख

और फिर उडता फिरता चरता फिरता

खूब बोलता-फिरता।''[1]

पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति पूँजीवादी कारखाने की धमनमट्टी में झोंककर रोज खुद आत्महत्या करता है। किंतु मरना नहीं वरन वह एक पूँजीवादी के रूप में पुनर्जन्म पाता है। इस तरह पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य पर मज़बूत प्रभाव डालती है और अपने अनुकूल मनुष्य को मोडती हैं।

'भाग गई जीप' शीर्षक कविता में पूँजीवादी समाज में अवसर की कमी से उत्पन्न भयानक प्रतियोगिता का चित्रण करते हैं। इस प्रतियोगिता में जनसाधारण अवसर वंचित हो जाते हैं। आज के इस समाज में भी समझौतावाद, अवसरवाद, स्वार्थता, धनमोह, पदलिप्सा आदि के समक्ष औसत आदमी अवसर वंचित है, कवि अवसर वंचित जनसाधारण से कहते है -

''तुम्हें कुछ

अच्छाई ही शेष थी

इसलिए घबरे गये

पकड न सके बस

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ. 44

और वह छूट गयी

पीछे रह गये तुम''[1]

अर्थात् तुममें कुछ भलाई शेष होने के कारण दूसरों को धोखा देते तुम्हें डर लगता है। इसलिए अवसरवादी सुविधाजीवी मुसाफिरों के सामान सुविधाओं की बस पकड न सके और तुम अवसरवंचित होकर पीछे रह गये। आज की इस प्रतियोगिता के समाज में यह कविता ज्यादा प्रासंगिक मालूम पडती है। पूँजीवादी व्यवस्था सर्वैवल ऑफ द फिटस्ट के सिद्धांत को पूर्णतः प्रयोग में लाती है। यह फटेहाल और अकर्मण्य लोगों की जिन्दगी को कष्टदायक, पीडादायक बनाती है।

**समझौता परस्ती का विरोध**

मध्यवर्गियों की समझौतापरस्ती मुक्तिबोध केलिए कविता का विषय है। हमारे देश का इस समाज का बडा अभिशाप समझौतापरस्ती रवैया तथा पलायनवादी स्वभाव है। ऐसे में मध्यवर्गीय व्यक्ति और उसका व्यक्तित्व अनैतिक, अस्वाभाविक अनुचित मूल्यों से युक्त होते हैं। मध्यवर्गीय समाज की अवसरवादी मनोवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कवि 'जिन्दगी का रास्ता' कविता में कहता है।

''दुनिया के उदरभरी मध्यवर्ग थर्राकर

रोटी की तलाश में

बेचता है आत्मा को

वेश्या के देह सा व्यभिचार के लिए''[2]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ. 20

भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ 181

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की स्वार्थता और अवसरवादिता उत्तरोत्तर बढती जा रही है। उनकी क्षणिक सुख के पीछे भागने की इच्छा पर बल देती है। वे अपनी स्वार्थपूर्ति केलिए पूँजीपति रावणों से औचित्य संगति और सामंजस्य चाहते हैं।

''जिंदगी का रास्ता

पूँजीवादी दानवों और मध्यवर्गी नपुंसक मानवों

की वंचना नगरी से छिटककर

टूटे फूटे घरोंवाली सील-खायी

गलियों के अंधेरे में

रहनेवाले आगामी युगों के स्रष्टाओं

के चौराहों पर मिलता है''[1]

ऐसी कविताओं में मुक्तिबोध समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन में संलग्न है। यह निरि कुतूहलतावश नहीं है। मुक्तिबोध का कवि-मन इस अवस्था से अशान्त है। यही अशान्ति उनकी कविता के मूल में है।

मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य में व्यवस्था की अमानवीयता के खिलाफ लडते कवियों में अग्रणी हैं। व्यवस्था की पशुता के कारण उनका मन संघर्षशील है। उनका विश्वास है कि व्यवस्था के बदले बिना इस नृशंसात्मक कार्य से मुक्ति असंभव है उनका मन नूतन व्यवस्था का पथ ढूँढने में संलग्न है। वे लिखते हैं

''कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ

वर्तमान समाज चल नहीं सकता

पूँजी से जुडा हृदय बदल नहीं सकता,''[2]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ. 194-95

2 मुक्तिबोध रचनावली दो से मुक्तिबोध पृ. 350-51

मुक्तिबोध की राय में अहंवादी व्यवस्था के नाश केलिए सुनिश्चित कार्यकलाप अनिवार्य है। इस ह्रासशील कलुषित व्यवस्था के खिलाफ अकेले लडा नहीं जा सकता। संगठन की शक्ति को अपनी नाडियों में महसूस करनेवाले कवि 'चंपल की घाटी में' शीर्षक कविता में कहते हैं -

''याद रखो

कभी अकेले में मुक्ति न मिलती

यदि वह है तो सबके ही साथ है।''[1]

यदि कोई अकेला है तो मौकापरस्त शोषक उसे अपना शिकार बना डालता है। इसलिए शोषण और छल कपट से बचने केलिए तथा पूरी दुनिया को इस अमानवीय शोषण से मुक्त करने केलिए संगठन ही एकमात्र उपाय है। मुक्तिबोध की कई कविताओं में संगठन की कल्पना उपलब्ध है। 'ओ काव्यात्मन फणीधर' कविता का सर्प जो कविता का आदर्श रूप का प्रतीक है। वह रात्रिकाल में वर्जित स्थानों में चक्कर लगाकर लोगों द्वारा फेंक दिये क्रान्ति भावनाओं रूपी रत्नों को इकट्ठा करता है -

वे फेंके गये रत्न, ऐसे

जो बहुत असुविधाकारक थे,

इसलिए कि उनके किरण-सूत्र से होता था

पट-परिवर्तन, यवनिका-पतन

मन में, जग में!''[2]

कवि काव्यात्मन फणीधर से अपना फण फैलाकर उस मणिगणों को धारण कर वात्मीकी गुहा में ले जाकर एकत्र करने का अनुरोध करते हैं। कवि आगेकहते हैं अंधेरे

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ 419

2 वही पृ. 178

के सूखे कुएँ के कचरे के ढेर में किसी का आत्मज सद्योजात शिशु उपेक्षित है जो किसी अभाग ने मनोविवशता के कारण या इसी के भय से अर्थात् व्यवस्था की अमानवीयता से आत्मोप्पन्न सत्य को त्यागा है। उस बालक आत्मा को वक्ष पर रख कर उसे तृषित श्रमिकों के मुख-विगलितजल से आर्द्र और कोमल भूमि पर ले जाओ गुलाब के पास रखो-

''वह श्रम-गरिमा का पी दूध

सत्य नवजात

विकसता जाएगा।''[1]

कवि यहाँ व्यवस्था से मुक्ति मिलने केलिए, अमानवीयता से निष्प्राण मनुष्य को नवजीवन प्राप्तकरने केलिए श्रम-गरिमा के दूध पीने का अर्थात् श्रमिकों के साथ जुडने कासंदेश देते हैं। 'पता नहीं' कविता में अपने खोई ज़िन्दगी के चैन को पुनः प्राप्तकरने केलिए जन मानस से सामाजिकता की ओर जाने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। इस कविता में मन के अंतस्तल में एक अग्निव्यूह है। उस पर प्रस्तर सतहें छायी हुई है। वह सहसा कांपती तडकती और टूटती हुई है और भीतर से वह ज्वलंत कोश निकल पडता है। वह उत्कलित होकर एक प्रज्वलित कमल हो गया। इस कमल कोश के पराग पर एक शक्तिपुरुष खडा हुआ प्रकट होता है

''वह शक्ति-पुरुष

जो दोनों हाथों में आसमान थामता हुआ

आता समीप अत्यंत निकट

आतुर उत्कट

तुम को कंधे पर बिठ ला ले जाने किस ओर

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ 182

न जाने कहाँ व कितनी दूर।''[1]

यह शक्तिपुरुष जो जनता की संगठित शक्ति का प्रतीक है। उसको कवि अपना मित्र मानते हैं। इस कविता का 'तुम' स्वयं कवि है। वह कवि को न जाने कहाँ ले जाता है। -

''फिर वही यात्र सुदूर की,
फिर वही भटकती हुई खोज भर-पूर की
कि वही आत्मचेतस अंतः संभावना,
जाने किन खतरों में जूझे जिन्दगी।''[2]

वहीं सुदूर यात्रा आत्मचेतस या सामाजिकता की ओर की यात्रा है और भटकती हुई खोज पूर्णता की खोज है। कवि आगे कहते हैं -

''अपनी धक धक
में दर्दीले फैले-फैलेपन की मिठास,
या निःस्वात्मक विकास का युग
जिसकी मानव-गति को सुनकर
तुम दौडोगे प्रत्येक व्यक्ति के
चरण-तले जन पथ बन कर।''[3]

कवि का यह पूर्ण विश्वास हे कि विद्रोह और संहार के बेना सामाजिक पशुता का नाश असंभव है। इसलिए मुक्तिबोध भी मार्क्स के समान सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण परवर्तन लाने में क्रांति को अनिवार्य मानते हैं। 'एक स्वप्न कथा' शीर्शक कविता में

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध पृ. 257
2 वही पृ 257
3 वही पृ 257

शोषण के काले सागर में डूबते नायक को व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त करने की मदद पहुँचानोवाली क्रांतिकारी शक्तियों के प्रतीक के रूप में जहाज़ को दिखाया गया है।

''वह जहाज़
क्षोभ-विद्रोह भरे संगठित विरोध का
साहसी समाज है!!''[1]

'कल जो हम ने चर्चा की थी' कविता में क्रांतिकारी विचारधारा धरती के नीचे से फूटनेवाले द्रवीभूत फॉसफोरस, गंधक, कार्बऩ और युरेनियम का प्रवाह है। कवि की राय में क्रांतिकारी विचारधारा जहरीला नहीं हो सकती। वह जन-मानस को गलत विचारों से मुक्त करती है। उन्हें सही विचारों का मार्ग दिखलाती है-

''अंजुली भर-भर
ज्ञान सरोवर का जल पीकर,
हम उठने को थे कि सामने
हम ने देखा
युगांतकारी आस्थाओं का
एक विशाल भव्य अक्षय वट,
उसके संचित-अनुभव-छाया तले खडी है।
स्वनाम धन्या
वेगवान पीडा की कन्या-
भव्य कर्म-निष्ठा जन-कन्या।''[2]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ 270
2 चाँद का टेढ़ा है मुक्तिबोध, पृ 112

यहाँ 'ज्ञान' क्रान्तिकारी ज्ञान है। 'युगान्तकारी आस्थाओं का भव्य अक्षय वट' क्रान्तिकारी आस्थाओं का प्रतीक है। उसकी छायातले खडी युवति स्वयं क्रांति है। 'अक्षय वट की छाया' संचित अनुभवों की छाया है। कवि यहाँ क्रांति को स्वनामधन्य कह कर एक ओर उसके बढपन को दिखाने का प्रयास करते हैं तो दूसरी ओर उसके प्रति अपना लगाव सूचित करने का प्रयास भी करते हैं। शोषण और उत्पीडन से उपजी पीडा ही जनता में क्रांति का विचार उत्पन्न कर देती है। मुक्तिबोध क्रांतिकेलिए उत्सुक है क्योंकि उनका विश्वास है कि भारतीय जनता के जीवन ओर समाज को एक उच्च सभ्यता के स्तर तक पहूँचाने केलिए क्रांति अनिवार्य है। 'सूरज के वंशधर' कविता में आजादी के बाद के भारतीय समाज का चित्र है। उनकी हालत भले ही दयनीय हो फिर भी उनमें क्रांति का अभाव नहीं है। इसलिए वे अपने प्रताडित जीवन का अंत क्रांति के माध्यम से करना चाहते हैं

''हवा में लहराती सुनहली ज्वाला एक
रोंगती सी मेरे पास
धीरे-धीरे आती हुई
आसमान छूती हुई व धरती पर चलती हुई
बिखराकर नीले नीले स्फुलिंग-समूह
वह बनती है आकस्मात
विराट मनुष्य रूप

कि जिसे क्रांतिकहते हैं

कि कहते हैं जन-क्रांति''[1]

इन पंक्तियों में कवि फैंटेसी के ज़रिये क्रांति के मानवीय प्रयत्नों के इतिहास को अभिव्यक्त करते हैं। हवा में लहराती सुनहली ज्वाला क्रांति की भावना है। वहीं भावना पहले कवि के पास रेंगती सी लगता है। अर्थात् कवि के मन को प्रभावित करते हैं। फिर वह भावना आस्मान को छूती हुई धरती पर चलती हुई दिखाई पडती है। वह आसमान से पृथ्वी तक फैलाती है। फिर वह बिखर कर नीले-नीले स्फुलिंग के समूह बन जाती है। आकस्मात वह समूह विराटमनुष्य रूप बन जाते हैं। दुनिया भरके संघर्षरत जन क्रांति भावना से प्रभावित होकर संगठित करते हैं। वह क्रांतिहो जाती है। जिस जन-क्रांति कहती है।

'लाल सलाम' जो संकलन के बाहर की कविता है, जिसमें सोवियटरूस में उदित लाल सूर्य की किरणों से फासिस्टों के कुहराच्छादित जाल के टूट जाने की आशा प्रकट करते हुए क्रंतिकारी जनता का स्वागत करती है

''लाल क्रांति की लडनेवाली मज़ूर- सोना आम,

उनको, उनके स्त्री-पुरुषों को मेरा लाल सलाम''[2]

मुक्तिबोध में युग की क्रांति की संपूर्ण सृजनात्मक क्षमता का संकल्प कवि संकल्प बन लहरा रही है।

सचमुच हो चुका हूँ

विश्व की उनमेष-ज्वाला जाल का मैं नम्रबंदी।''[3]

---

1 भूरी भीरी खाक धूल, मुक्तिबोध पृ 175

मुक्तिबोध रचनावली एक- सं.नेमीचन्द्र जैन, पृ 131

वही पृ 152

निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध क्रांति की अनिवार्यता के पक्षधर कवि है। यह क्रांति जीवन के किसी एक पक्ष तक सीमित नहीं बल्कि समाज के समग्र परिवर्तन केलिए आकांक्षित क्रांति है।

**सांस्कृतिक विघटन के आयाम**

मुक्तिबोध की कविताओं की यही विशेषता है कि उनकी कविताएँ समसामयिक समाज को बदलने केलिए प्रतिबद्ध है। उनकी कविताओं में संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, साहित्यिक, नैतिक क्षेत्रों में हुए विघटन का चित्रण है। प्रमुख रूप से सामाजिक स्थिति की दारुण स्थिति का अंकन उन्होंने सर्वत्र किया है। हिन्दुस्तान का रूप 'सूरज का वशधर' कविता के इस प्रकार किया गया है।

''सूखी हुई जांधों की लंबी लंबी अस्थियाँ
हिलाता हुआ चलता है
लॉगोटीधारी यह दुबला मेरा हिन्दुस्तान
रास्ते पर बिखरे हुए
चावल के दानों को बीनता है लपक कर
मेरा यह सांवला इकहरा हिन्दुस्तान
सटर-पटर सामान को धरे हुए शीर्ष पर
रोते हुए बच्चों को कंधे पर बिठाये हुए
ज़िन्दगी को ढोता है बहादुर हिन्दुस्तान
अपने ही पुत्र के प्रेत को उठाये हुए सांवले हाथों में

श्मशान की ओर जाता

दिल में बिलखता हुआ

विचारों का भावों का तूफानी समुंदर हिन्दुस्तान''[1]

सामाजिक अंतर्विरोधों पर मुक्तिबोध दृष्टि सदैव लगी रही है। निम्न जातिके लोगों को ज़िदा जलाने का षड्यंत्र एक तरफ है तो दूसरी तरफ उसकी रोशनी में संहिताएँ पडी जाने का ढोंग भी है। इसी को मुक्तिबोध सबसे खतरनाक सांस्कृतिक विघटन समझते हैं।

''देख ले कि वस्ती के झोपडों में लगी आग,

नभ-चुंबी ज्वालाओं के गंधगी प्रकाश में

पढी जा रही हैं आज

अध्यात्म की संहिताएँ

राजनीति-ग्रन्थ और रोमान्स के उपन्यास

गाँवों को जलाती हुई

नभ-चुंबी ज्वाला के प्रकाश में

भारतीय संस्कृति-विकास किया जा रहा''[2]

बाहरी रूप के सुन्दर और सजी-धजी पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्विरोध को कवि यहाँ व्यंग्य के सहारे अंकितकरते हैं। आज आदमी के कष्टदायक जीवन की ओर सत्ता मौन है और वह संस्कृति के विकास में लगा हुआ है पर प्लेग जैसी महामारी हर कहीं व्यापी हुई है।

''बस्ती में हर साल

प्लेग महामारी के भयानक समाचार

---

1 भोरी भूरी ख़ाक धूल, मुक्तिबोध, पृ 171 72
वही 171 72

अखबारों में हमीं तो छापते हैं''[1]

यहाँ प्लेग मात्र की महामारी नहीं है। वह कई प्रकार की कठिनाइयों और गलत रीतियों से संबंधित है।

सांस्कृतिक मूल्य विघटन के विभिन्न पक्षो की तरफ पाठकीय चेतना को सक्रिय बनाना मुक्तिबोध की कविताई का लक्ष्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के मूल्यविघटिक समाज कि तरफ मुक्तिबोध संकेत करते हैं। उदाहरण के तौर पर भ्रष्ट हुए जा रहे नेताओं की तरफ उनका इशारा है। एक जमाने में जो जनता के बीच में थे वे आज इतने अलग अलग हो गये हैं जिनका आज आदमी के साथ कोई रिश्ता नहीं रह गया है। पुराने जमाने के रक्षको के चेहरे आज बहुत बुरे हैं। यह बदलाव मुक्तिबोध के अनुसार व्यक्तियों का बदलाव नहीं बल्कि मूल्यों का बदलाव है।

''इस नगरी में अच्छे अच्छे
लोग हुए जाते हैं देखो
शैतानों के झबरे बच्चे
(एक जमाने में जनता के साँगन में नंगे खेले थे
जन जन के पगडंडी पर वे जन मन के थे
किंतु आज उनके चेहरे पर
विद्युतवज्र गिरानेवाले
बादल की कठोर छाया है।''[2]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ 174
वही पृ 147

इन नेताओं में कुछ अपने स्वार्थी मालिक का रूप लेकर आधी आँखें मूँदकर चबूतरे पर जा लेटे हैं। षट्यंत्र द्वारा लोगों के घर-बार उजाडने में लगे हुए हैं। उनके स्वामियों वे इन लोगों को अपने विरोधी दलों का उन्मूलन के अपना हथियार भी बनाया है।

'चांद का मुँह टेढा है' नामक कविता मज़दूरों की हडताल को विषय बनाकर लिखी गयी है। इसमें वे गाँधीवाद की आलोचना करता है। गाँधी की मूर्ति पर बैठा हुआ उल्लूक तिलक के पुतले पर बैठे हुए उल्लूक से कहता है कि मैं ने श्मशान में प्राप्त सिद्धि से मूठ मारकर भारतीय जनता को वश में किया। तिलक के पुतले पर बैठा हुआ उल्लूक काले आस्मान में तैरती भयानक लाल मूठ को देखता है। और बहुत प्रभावित होकर उससे कहता है-

वाह वाह,
रातके जहाँपनाह
इसलिए आजकल
दिन के उजाले में भी
अंधेरे की साख है
इसलिए संस्कृति के मुख पर
मनुष्यों की अस्थियों की राख है
ज़माने के चेहरे पर
गरीबों की छातियों की खाक है
वाह-वाह!!''[1]

---

[1] मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध पृ 279

आज की इस पूँजीवादी व्यवस्था में मानव की अस्थियों की राख से संस्कृति का मुँह और गरीबों की छातियों की खाक से ज़माने के चेहरा मलिन हो गया है। वह तुम्हारी ही इंद्रजाल है। गाँधीजी ने तांत्रिकों की तरह भारतीय जनता पर अपना मंत्र चलाया था। आज उसकी जो दशा है उसकेलिए वही जिम्मेदार है। मज़दूर जब अपनी जायज़ माँगों को लेकर संघर्ष करते हैं। उन्हें संयम बरतने का उपदेश देते हैं। भूख की स्थिति पर भी उपदेश देते हैं। 'डूबता चाँद कब डूबेगा' शीर्षक कविता में राजनीतिक नेताओं के मूल्य विघटन का चित्रण है।

''मानव मस्तक में से निकले
कुछ ब्रह्मराक्षसों ने पहनी
गाँधीजी की टूटी चप्पल''[1]

## राजनीति की सही दिशा

मुक्तिबोध सही अर्थ में राजनीतिक कवि है। लेकिन उन्होंने स्वीकार किया है कि उनकी राजनीति देश की रोजमर्रा की राजनीति नहीं बल्कि एशिया, आफ्रिका, और लैटिन अमेरिका के उपनिवेश वाद और नव उपनिवेश वाद के विरुद्ध संघर्षरत देशों की राजनीति है। जिसके प्रहार का मुख्य लक्ष्य सम्राज्यवाद है। अंतर्राष्ट्रीय़ राजनीति से मुक्तिबोध का संबंध व्यक्त करनेवाली कविता है 'बारह बजेरात के'। इसमें नाटो-सीटो जैसी भौजी संधियों वाले साम्राज्यवादी देशों के बीच इंगलैंड के एक होटल में चलनेवाली युद्ध मंत्रणा का बहुत ही बीभत्स और भयानक चित्र खींचा है-

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 304

''भवन के सातवीं तल्ले पर कुछ लोग

दुनिया की आत्मा की चीर-फाड

करने के बाद ही

टेबल पर बहती हुई लोहू की धारा में

उँगलियाँ डुबोकर

खूनकी लकीरों से

देशों की नयी नयी खूनी लाल खूनी लाल

सरहदें सीमाएँ बनाते ही जाते हैं

हवाईअड्डों की प्रस्तावित स्थानों पर

खूनी क्रांस लगाकर

भौजी घेरे मोर्चों

नये नये रक्त के चिह्नों से जाते है बनाते''[1]

लेकिन इन पूँजीपतियों केलिए यह मालूम नहीं है कि युद्ध जीतकर वे किस भाग को अपना पायेंगे। इस कवित का अंत साम्राज्यवाद का पराजयसे होती हैं।

''भट गया अंधेरा

जनताके शत्रुओं ने अपने ही नाखूनों से

पागल हो

चीर डाला, चीर डाला

अपने ही सीने की हडडियों का घेरा यह दुहेरा''[2]

---

1 मूरी मूरी खाक धूल. मुक्तिबोध. पृ. 81

मूरी मूरी खाक धूल. मुक्तिबोध. पृ 82

'ज़माने का चेहरा' शीर्षक कविता का विषय भी अंतर्राष्ट्रीयराजनीति है। इस लंबी कविता के प्रथम भाग में द्वितीय विश्वयुद्ध, पश्चिमी और पूर्व यूरोप की स्थिति स्टालिन ग्राम के युद्ध मेंलाल सेना की विजय आदि का वर्णन है। इसमें युद्ध के यथार्थ और खतरनाक दृश्य हैं। साम्राज्यवादी देशों की अनियंत्रित मोह ने दुनिया को युद्ध के गर्त में गिरा दिया।

''देखता रहा चारों ओर
देखता रहा दिशाओं में विद्रूप छायाकार
अजीव उतरते हुए पैराशूट-पैराट्रूप
क्षितिज के चेहरे पर उभरा काला भाव एक
आँखों में उभरी है स्टेनगन
आसमानी बिजली का पीला प्रचण्ड हाथ
बढ गया, बढ़ गया
धरती की गरदन को
मुट्ठी में भींचने,
जहरीली घनघोर लपटों की छाती पर
मृत्यु की गोद में
पृथ्वी को खींचने!!''[1]

नास्सियों की क्रूर नीति, अंग्रेज़ियों का अतिमोह, ब्रिटन अमरिका तथा फ्रैंस की समाजवादी जाग्रता ने साधारण जनता की जिंदगी को कष्टदायक बना दिया है। हर गाँव

---

1 मुक्तिबोध रचनावली की मुक्तिबोध पृ 57 58

और हर शहर में नास्सियों का प्रभाव बड़ गया है। उस समय संसार की मुक्तिकामी मदूरों तथा जनसाधारण का ध्यान सोवियट शक्ति की और मोडा

''लन्दन का मज़दूर फ्रांसीसी गुरिल्ला युवजन,

घूर घूर वाशिंगटन

देखता था स्तालिनग्राद युद्ध की ज्वालाओं की कलगी!!''[1]

सोवियत सैनिकों का हृदय अपनी शक्ति के विश्वास और स्वतंत्रता की रक्षा की चेतना से गुंजायमान था। सोवियत संघ पर नासियों के आक्रमण को उन्होंने उपयुक्त उत्तर दिया। इससे जनता में उनपर विश्वास बढ गया। भारत मेंउस समय भारत छोडो आन्दोलन छिडा हुआ था। भारत ने उसी समय से ही स्वाधीनता केलिए लडने वाले देशों से मैत्री स्थापित की थी। स्वाधीनता प्रप्ति के बाद भी भारत ने उपनिवेश के विरोध में अपनी आवाज़ उठाई। इस कवितामें भी अरब देशों के स्वधीनता संग्राम तथा उस पर भारोतीयों का समर्थन देखने को मिलता है। अरब देशों की मदद केलिए उठाये गये हाथवह भारतीयों के हैं।

''भाई की भारतीय भावना का मज़बूत हाथ वह

सहारा को पारकर

अरब के द्वार पर

भारतीय आलिंगन लिपटता है हिय-भर

रेगिस्तानी धूप में''[2]

मुक्तिबोध ने इस कविता में साम्राज्यवादी शोषकों के अमानवीय शासन के कई चित्र बिंबात्मकता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। अरब अश्वरोही सैनिको की ऑखो में

मुक्तिबोध मुक्तिबोध 62
वही 79

फ्रैंसीसी ज़मीन्दारों के खेत में उठे हुए दो हाथ तैर रहे हैं। ये हाथ एक दीन अरब बालक का है। वह चिल्लाता है अभी-अभी फ्रैंसीसी सैनिक मेरे बडे भाई और माँ को पकडकर पता नहीं कहाँ ले गया है। पता नहीं उनका क्या हुआ।

चिलचिलते हुए दृश्य -

फांसीसी ज़मीन्दारी खोतों में उठे हुए

प्यारे प्यारे नन्हें हाथ किसी अरब कुली के

दीन अरब बालक के असहाय हाथ दो

उसे यों पुकारते हैं -

अभी-अभी चिलकती संगीत

मेरे बडे भैया को ले गयी पकडकर

कहीं कोई कहीं कोई

मेरी माँ को अभी अभी पकड कर ले गया।।

पतानहीं माँ कहाँ,भाई कहाँ,

पता नहीं क्या हुआ, क्या हुआ।।''[1]

साम्राज्यवादियों ने आज नवउपनिवेशवाद का तंत्र अपनाया है। सीधे रंग से दूसरे देशों पर अपना अधिकार स्थापित करने के बजाय परोक्ष ढंग से भारत जैसे देशों के उद्योगों को अपने प्रभाव में लाने का तंत्र उन्होने अपनाया है -

''साम्राज्यवादियों के

पैसों की संस्कृति

भारतीय आकृति में बाँधकर

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो. सं मुक्तिबोध. पृ 81

दिल्ली को

वाशिंगटन  व लंदन का उपनगर

बनाने पर तुली है!!

भारतीय धनतंत्री

जनतंत्री बुद्धिवादी

स्वेच्छा से उसी का ही कुली है!!''[1]

साम्राज्यवादियों का समर्थन करनेवाले पूँजीवादी शोषकों पर भी लेखक ने कठोर प्रहार किया है। साम्राज्यवादियों ने अपने तांत्रिक बुद्धि और वैज्ञानिक शक्ति की मदद से इनसानी आसमान को कैद कर लाना चाहा है -

''भीषण बहुत है वह अन्धड और बवण्डर

आसमानी नीले रेगिस्तान में

बहा रहा है या कि उडा रहा है जो कि

अस्तप्राय साम्राज्यवादी पशु-सूर्य की

अधकटी

किंतु फिर भी लडती हुई

आधी देह!!''[2]

यह कविता युद्धोत्तर काल की अंतराष्ट्रीय राजनीति का वस्तुपरक माल्यांकन है।

देश की उन्नति का आधार विज्ञान के विकास पर निर्भर है। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में विज्ञान का क्षेत्र भी खतरनाक परिस्थितियों से भयावह है। वैज्ञानिक भी पूँजीवादी अत्याचारों के शिकार हैं। 'भविष्यधारा' शीर्षक कविता में एक वैज्ञानिक है।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 77

मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 83

उन्होने पूँजीवादी व्यवस्था के हनन केलिए समीकरण का जो सूत्र आविष्कृत किया, जिसे पूँजीपति वर्ग ने चुराकर जला दिया। इतिहास का गहरा लज्ञान रखनेवाले तथा विश्व राजनीति की गति की असलियत को पहचाननेवाले कवि को ऐसा लगता है यब इतिहास का दुहराव है। इसलिए उन्हें पूरा विश्वास है कि वह सूत्र फिर आविष्कृत करेगा और उन्हें दृढ विश्वास है कि पूँजीपतियों का नाश निशचित है। इसलिए कवि कहते हैं -

''तुम्हारा अंतिम दिन आ-रोक आ रहा
दुष्ट भाव का सर्प हृदय से कण्ठ
कण्ठ से आगे उस मस्तिष्क-कोष में घर बना रहा।
तुम्हें मृत्यु का अक्षर सफेद
दिख रहे क्षितिज पर स्पष्ट
व बडे बडे!!''[1]

इस प्रकार पूँजीवादी अत्याचारों का अंत होने की एक संकल्पना मुक्तिबोध की तमाम कविताओं में विद्यमान है।

विदेशियों के आक्रमण तथा साम्राज्ववादी नीति की वजह से हमारे देश में नैतिक मूल्यों का पतन शुरू हो गया। पूँजीवादी व्यवस्था का उदय और विकास नैतिक पतन की पराकाष्ठा पर पहुँचा। नैतिक पतन का चित्रण यथार्थ की गहराइयों में जाकर मुक्तिबोध ने किया है। इस व्यवस्था में कमज़ोर मनुष्य शोषण का सबसे बडा शिकार है। मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में फैंटसी शिल्प के सहारे नैतिक पतन का वास्तविक दृशय अभिव्यक्त किया है। 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथा' शोषण का चित्रण है।

''खूबसूरत कमरों में कई बार

---

1 भूरी भूरी खाक धूल- मुक्तिबोध, पृ. 56

हमारे आँखों के सामने

हमारे विद्रोह के बावजूद

बलात्कार किए गये

नक्षीदर कक्षों में''[1]

'मुझे याद आता है' कविता में पूँजीवादी व्यवस्था में हुए सांस्कृतिक विघटन का चित्रण है। इसमें कवि की आँखों के सामने कुहरे में ढंके हुए से दिखाई पडनेवाले पहाड जिंदगी के न-कह-सके-जाने-वाले अनुभवों के ढेर का प्रतिरूप है या

''आज के अभाव के व कल के उपवास के

व परसों की मृत्यु के

दैत्य को, महा-अपमान के व क्षोभपूर्ण

भयंकर चिंता के उस पागल यथार्थ का

दीखता पहाड -

स्याह!''[2]

उस पहाड या जीवन यथार्थ की देह पर क्षुद्रतम सफलता की आड में मुस्कुराते हुए चाँद की विषैली चाँदनी फैलाती दीखती है। संस्कृति के भीतर छिपा यथार्थ को पूँजीपतियों की ह्रासशील सफलता दीखता है। 'विक्षुब्ध बुद्धि के मारक स्वर' कविता में साम्राज्यवादी समाज में होनेवाले नैतिक पतन का चित्रण है साम्राज्यवादियों के नैतिक पतन उसके मूर्धन्य पर है।

''यह सही है कि वह गगन दहन

था एक चरण युग का

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ 13

2 वही एक वही, पृ. 237-38

वह युग जिसमें कि प्रजापतियों का

दृप्त व्यभिचरण था

यद्यपि काले शून्याकारी फैलावों में

मानव जग का था नाम नहीं।''[1]

इस प्रकार साम्राज्यवादी और पूँजीवादी व्यवस्था ने भारतीय संस्कृति के सभी मूल्यों को नष्ट कर दिया है। उसने अंतर्मन से पाशविक वृत्ति को जगाया। वह देश की जनता को कष्ट में खींच रहा है। इसलिए मुक्तिबोध इस व्यवस्था के खिलाफ जागने का संदेश देते हैं।

## गुलामी के जंजीरें टूटे

पूँजीवादी अमानवीयता से किसी न किसी तरह जनता को मुक्ति दिलाने का दृढ संकल्प मुक्तिबोध में है। 'लकडी का बना रावण' कविता पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ लडनेवाले मुक्तिबोध का सबसे बडा हथियार प्रस्तुत करती है। इस कविता में पूँजीवादी ह्रासोन्मुख सत्ता का जीवंत प्रतीक, आभिजात्य से जुडे बुर्जुआ के स्वप्नों का प्रतीक रावण जो जनता का समुदायको भीड, डार्क मासेज और मॉब कडता है। लेकिन वहीं उसकी सत्ता को समाप्त करनेवाली शक्ति बन जाती है।

''समुदाय भीड

डार्क मासेज यो मॉब है

श्यामवर्ग मूढों के दिमाग खराब है।''[2]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ. 39

2 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 371

आधुनिक युग के इन विरोधाभासों को व्यक्त कर शासक वर्ग के सन्देहों का उज्वल चित्रण इस कविता में है -

''क्या यह सच,

कम्बल के भीतर है कोई जो

करवट बदलता-सा लग रहा?

आँदोलन?

नहीं, नहीं मेरी आँखों का भ्रम है।''[1]

जनसमूह के चेहरे उग आ रहे हैं। जनतंत्र वानर उसके सत्ता को समाप्त करने वाली शक्तिपुँज बन जाते हैं। पूँजीवादी अत्याचारों को खत्म करने की संकल्पना 'भूलगलती' में भी दिखाई पडती है। ऐसा संकेत उनकी बहुत सी कविताओं में सुलभ है। कहीं-कहीं यह स्पष्ट उल्लेखित है कहीं अस्पष्ट रूप से। वे यह चाहते रहे कि गुलामी की जंजीरें टूट जाए और स्वतंत्रता की खुली हवा में सभी समान ढंग से प्राप्त हो। यह स्वर सामाजिक आकांक्षा है। इसको रचनाधर्म दिशा देने तथा उसे पूरी तरह से कविता में प्रकटकरने का कार्य ही मुक्तिबोध का कविधर्म है।

मुक्तिबोध जनजीवन से गहरे सरोकार रखनेवाले साहित्यकार है। मार्क्सवादी जीवन दर्शन आत्मसात करने के बाद उन्होंने साधारण जनता के निकट आने केलिए सबसे पहले आत्मसंशोध को माध्यम बनाया। यह उनकी व्यक्तिगत ईम्न्दारी का श्रेष्ठतम प्रमाण है।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध. पृ. 369

अध्याय चार

# मुक्तिबोध की कविता में व्यवस्था और आदमी

## व्यवस्था और आदमी

मुक्तिबोध की कविताओं में समाज के भीन्न-भिन्न स्तरों के लोगों की जिंदगी की अभिव्यक्ति है। धन मोह,पद मोह, तथा स्वार्थ पूर्ति केलिए अपनी आत्मा के गर्भ से सत्य के भ्रूण को अवैध कहकर उसका सर्वनाश कर इस व्यवस्था के वे हिस्सेदार बनते है। कुछ अपने आदर्शों केलिए जीते हैं। कुछ इस भ्रष्ट व्यवस्था के कुकर्मों के समक्ष खामोश होकर उनके आश्रयान्वेषी बनकर इस व्यवस्था का पोषण करते हैं। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो इस व्यवस्था के विकृतियों को देखकर बारह्मराक्षस की तरह संघर्ष भरा जीवन बिताते हैं। उन्हें इस व्यवस्था रूपी पहाड को अथाह समुंदर में फेंकने की अभिलाषा है। लेकिन परिस्थिति अनुकूल नहीं है। इसलिए वह बाहरी और भीतरी उलझन में फँसते हैं। लेकिन कुछ ऐसे हैं जो प्रतिदिन शोषण के शिकार हैं। वे अपने जीवन की हार को स्वयं सहकर अपनी भलाई से निरंतर अवसरवंचित होकर जीते हैं लेकिन ये लोग कवि की दृष्टि में फटेहाल भी है, जिंदादिल भी है। मुक्तिबोध ने आज को इस उत्पीडित वर्गों की साधारण मनस्थिति को भी व्यक्त किया है। अपनी बिकी हुई मेहनत, बेसहारा जिंदगी, आकांक्षा, सामाजिक उलझन उन्पन्न मानसिक तनाव, स्थिति परिस्थिति की क्रिया-प्रतिक्रियात्मक संवेदनाएँ आदि मुक्तिबोध की कविताओं में दर्ज है। अपने समाज की यथार्थता को विसंगतियों की विद्रूपताओं को कलात्मक अभिव्यक्ति देने की छटपटाहट जितनी मुक्तिबोध में है उनती उनके युग के किसी कवि में नहीं है। वस्तुतः यही द्वंद्व उनकी कविताओं की आत्मा है।

मुक्तिबोध कीकवितामेंप्रत्यक्षपूँजीपति वर्ग, समविधाजीवि, उल्लू का पट्टा, उत्पीडित निम्न वर्ग हमारी नज़र के आगे भी विद्यमान है। प्रतिदिन हम उनके संपर्क में आते हैं।

वार्तालाप करते हैं। उनके खिलाफ लडते है। शायद हम भी उनमें से एक है। श्रीकांत वर्मा के शब्दों में ''मुक्तिबोध की सार्थकता इसमें है कि उन्होंने इतिहास के प्रश्नों को केवल इतिहास के प्रश्न कहकर नहीं छोड दिया बल्कि उन्हें कविता के प्रश्नों में बदल दिया।''[1] मुक्तिबोध रोजमर्रा की जिन्दगी में आदमी के दर्द का चित्रण कर आज के वन्य संसार को अपनी कविता में प्रस्तु करनेवाले कवि है।

**व्यवस्था की अमानवीयता**

पूँजीवादी समाज में सत्ताधारी आदमी तमाम सुविधाओं को अपने में समाहित करते हैं। देश का सारा धन अपनी सुविधा बढाने केलिए इसतेमाल करते हैं। नियमों को सुविधानुसार तोडना-मोडना, अधिकारों को अपने अधीन में करना आदि इन सत्ताधारियों का लक्ष्य है। इस लक्ष्य प्राप्ति केलिए वे अपने षड्यंत्रों के जाल से सच्चाई पर निर्भर लोगों को फँसाते हैं। पूँजीपतियों का जाल उतना उलझन भरा है कि फँसे हुए लोग बाहर निकलने में असमर्थ पाते हैं। वे उन्हें अपनी लक्ष्य प्राप्ति केलिए उनका नौकर बना डालते हैं। इस व्यवस्था में जो लोग फटेहाल और ईमान्दार है निरंतर अवसरवंचित है। उनकी जिंदगी को यह व्यवस्था कहीं का कहीं छोडती है।

इस व्यवस्था का कोई मानवतावादीनैतिक नियम नहीं है। सारे कोरोबारी महज मक्कारी है और चूँकी कारोबारी की निगाह में मक्कारी का नाम दुनियादारी हा। यहाँ बडों केलिए एक नियम हैतो फटेहाल फुटकल लोगों केलिए दूसरा नियम है। घृणा तो पूँजीवादी समाज के साथ बद्धमूल शब्द है। इस समाज में रोज़गार और तरक्की के अवसर सीमित होने के कारण प्रतियोगिता उत्पन्न होती है। यहाँ लोग दूसरों को धकियाते हुए आगे बढाने में भी जल्दबाजी में हैं

---

1 अंतरल का पूरा विलंब अंधेरे मे सं निर्मल जैन, पृ 107

''इस सल्तनत में

हर आदमी

उचककर चढ जाना चाहता है,

धक्का देते हुए बढ जाना चाहता है

हर एक को अपनी अपनी

पडी हुई है।

चढने की सीढियाँ

सिर पर चढी हुई हैं''[1]

अवसर की अपर्याप्तता से उत्पन्न इसे ठेलमठेल धकापेल में उन्नति की ऊपरी मंजिल पर पहूँचने के प्रयास में कुछ लोग टूटी हुई सीढियों में फँस जाते हैं और कुछ लोग उस प्रयास में नीचे गिर कर जीवन लीला समाप्त करते हैं और कुछ लोग प्रगति के चक्करदार धनधोर लोहे के जीने में चढने के प्रयास में साँस रोककर स्वर्ग सितारते हैं।[2]

इस प्रतियोगिता में हर एक को अपना-अपना बुलडोज़र क्रेन उठाए चलना है। इनमें से कुछ लाल व क्रूर आँखों से धूरते हुए एक दूसरी की सीढी पर चढ बैठते हैं। उन्नति के शिखर तक पहूँचने के पहले अनेकों को अपना प्राण नष्ट होते हैं। उन्नति के चक्करदार जीनो पर चढने की हृदयहीन आपाधायी ने एक दूसरे के प्रति नफरत या नफरत तथा बीवी के साथ सियासत[3] करने केलिए मज़बूर कर दिया। बावजूद ठेलमठेल धक्कमपेल और तेज़ रफ्तार के

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध 88
वही पृ 19
वही पृ 89

''सब लोग सब कहीं जा रहे हैं,

लेकिन, कोई कहीं नहीं जा रहा है।''[1]

मुक्तिबोध की कविताओं में सूचित नोच खसोट, अवसरवाद तथा भ्रष्टाचार का बाज़ार गर्म है। कल के मसीहा आज उत्पीडक हो उठे हैं। सर्वत्र क्षोभ, कष्ट, अन्याय और उत्पीडन के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। समाज के भीतर विभिन्न वर्गों की खाइयाँ और भी चौडी हो गयी हैं। यहाँ तक की मध्यवर्ग में भी दो श्रेणियाँ पैदा होकर अपनी दूरी को खतरनाक तरीके से गहरी और चौडी कर रही है। किसान मज़दूर और पूँजीपति ज़मींदार के बीच की दूरियों का तो क्या कहना मानव संबंध टूट फूट गये हैं, उलझ गये हैं समाज में शोषकों, उत्पीडकों और उनके साथियों का ज़ोर बढ गया है।[2] उलझाव व पेचीदगियों से युक्त पूँजीवादी समाज का भीषण चित्र उसकी असलियत में पेश करने के प्रयास में उन्होंने कविता के साँवले अंधेरे जैसे भयावह रंगों से लेपित किया है। इस व्यवस्था के घोर यथार्थ को जानना ही मुक्तिबोध की कविता का लक्ष्य है।

**शोषण की जडों की तलाश**

सत्ताधारियों तथा देश की पूँजी को अत्याचार के इन्द्रजाल से फँसाकर अपने में इकट्ठा करनेवाले लोग इन शोषक पूँजीपतियों में सम्मिलित हैं। यह छोटा सा हिस्सा दुनिया के हर पूँजीवादी समाज में विद्यमान है। यह वर्ग वास्तव में समाज की शाँति को छीनने तथा जनजीवन की जिन्दगी को पीडादायक बनाता है। उन्हीं के मन के अंतर ओरांग उटांग रहता है। वे उसका पोषण करते हैं। मुक्तिबोध पूँजीपति वर्गों के अंधेरे

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ 89
मुक्तिबोध रचनावली खंड, मुक्तिबोध, पृ. 196

तहरवाने में घुसकर उनके रहस्यों तथा षड्यंत्र को ढूँढ निकालते हैं और आपनी कविताओं के माध्यम से हमारे समक्ष पेश करते हैं।

'चंबल की घाटी' में शीर्षक कविता में पूँजीपति जादूगार ने अमानवीय शोषण से मनुष्य को शिला रूप दे दिया है अथवा प्रलोभन सूत्रों में मनुष्य को बंद बन्द करके उन्हें सहस्त्र आकर्षण जालों में उन्हें फँसकर कैद करके चट्टान का रूप दे दिया है। व्यक्तित्व रेखाओं से युक्त वह पत्थर आज गोल रूप में अचेतन होकर व्यवस्था के पठार पर स्थित है

''जिन्दा है सच
जीवित अभी तक।
हो न हो,
बीते हुए ज़माने में ये
मनुष्य थे सब।
संभव है, ज्ञानी और त्यागी रहे हो..
और किसी पुराचीन कथा अनुसार
कोई यातुधान
(कोई जादू-दाँ)
इन्हें खींचकर
प्रालोभन सूत्रों में इन्हें बद्धकर
सहस्त्र आकर्षण-जालों में इन्हें रूद्ध कर

शिला-रूप दे गया,

कर गया कैद''[1]

इतना ही नहीं अमानवीय शोषण से उनके पत्थरों से ढँके हुए विवेक का रत्नकोश तथा चेतनादीप्तियों को उनसे छीनकर कहीं लाकर छिपा दिया गया है। खतरनाक शोषण के डाकुओं ने जनसाधारण के गाँव को लूट-पाट और डाका डालने के बाद जला दिया है। गाँव के फटेहाल लोग अपनी तमाम चीज़ों व बच्चों को लेकर भाग रहे हैं। 'एक प्रदीर्घ कविता का प्रस्ताविक' शीर्षक कविता में पूँजीपति कारीगर जनसाधारण के शोषण से धन कमाकर इस धन से रंग बिरंगी चीज़ें बनाते हैं। यह स्वार्थी कारीगर अपनी दीर्घ-दृष्टि की गुलेल से जनसाधारण की कोकिलों को मारते हैं -

''इनके चिकने प्राणातीत तनों को लेकिन

अपने घर के कोने में भर

कैंची लेकर पंख कतरते बैठे हैं स्वार्थी कारीगर।

इनके रंग-बिरंगे कोमल रोओ से अब

भडकीले भावों के ऊनी कोट बनेंगे

नई साडियाँ शाल बनेंगी।''[2]

यह स्वार्थी कारीगर विहंगों की पंख से ऊनी कोट नई साडियाँ तथा शाल बनते हैं। फिर भी वे संतृप्त नहीं हैं। वे उसके कलेज से 'लिवर ऑयल' निकालकर स्वास्थ्य ठीक करते हैं। पूँजीवादी शोषण की पराकाष्ठा को फैंटसी के ज़रिए पेश करने का कार्य कवि ने यहाँ किया है। इसी दृश्य से कवि जनसाधारण को धोखा देकर धन इकट्ठा कर अपनी कीर्ति तथा सुविधाओं को बढानेवाले आज के पूँजीपति का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 403

2 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध पृ. 160

वे मानव की अभिलाषाओं का अंत कर उसकी चिता बनाते हैं और चिताभस्म से अपनी भभूतियाँ ले लेते हैं। कवि के अनुसार पूँजीवादी समाज में -

''सारा वातावरण अराजक भावों का बेचैन धुआँ है''[1]

'विक्षुब्ध बुद्धि का मारक स्वर' शीर्षक कविता में पूँजीपति मकान मालिक तथा टैक्सइन्स्पेक्टर का रूप धारण कर इस धरती पर रहने केलिए जनसाधारण से किराये के रूप में जबरदस्ती रक्त, और मांस को वसूल करने का चित्रण है -

''वह दृष्ट ब्रह्म कर रहा जबरदस्ती वसूल
हमसे तुमसे
यह रक्त-किराया, अस्थि-मांस-भाडा
इस धरती पर रहने का'' [2]

मकान मालिकों तथा टैक्सइन्स्पेक्टरों की संख्या भी आज बढ़ गयी हैं। इसलिए मुक्तिबोध ने जिंदगी को भूतों का वाडा माना है। पूँजीवादी सभ्यता मानव संबंध और सत्य पर अधिष्ठित नहीं। वह धन सत्ता पर आधारित है।

**व्वस्था में पिसता आदमी**

वैयक्तिक भिन्नता के कारण व्यक्तियों की जिंदगी भी भिन्न भिन्न प्रकार के हो जाते हैं। कुछ व्यक्ति इस व्यवस्था के अनुकूल अपने को रूपायित करने को तैयार हैं। मौकापरस्ती, पदलिप्सा, धनमोह तथा प्रतिष्ठाओं की प्यास में वे आदर्श खो देते हैं और दूसरों को लूटते-खसोटते हैं। वे उत्तरोत्तर भौतिक उन्नति करते जाते हैं। लेकिन जो ईमानदार हैं वे इस व्यवस्था में फिट नहीं होते हैं। उनकी जिंदगी मेमने की तरह कुरबान होती है। उनका करुणा-आक्रंदन आसमान में छाया हुआ है। फिर अत्याचार रूपी काले

---

1 भूरी भूरी खाक धूल पृ 161
वही पृ. 41

सागर में डूबकर मिट जाता है। 'डूबता चाँद कब डूबेगा' कविता में वसुदेव और कंस के मिथक के द्वारा इस पाशविक व्यवस्था में आत्मज सत्य को सुरक्षित रखने की मुज़ीबत पर विचार करते हैं -

''जाने कितने कारावासी वसुदेव स्वयं अपने कर में
शिशु-आत्मज ले
बरसाती रातों में निकले
धँस रहे अंधेरी रातों के
विक्षुब्ध पुर में यमुना के
अति दूर अरे उस नन्द ग्राम की ओर चले।
जाने किसके डर स्थानान्तरित कर रहे वे
जीवन के आत्मज सत्यों को।
किस महाकंस के भय रवाकर गहरा-गहरा।''[1]

इस कविता में चित्रित कारावासी वसुदेव की स्थिति आज ईमान्दार आदमी का भी है। महाकंस ने आज पूँजीपतियों का रूप धारण कर अपने विरुद्ध आवाज़ उठानेवालों का अंत कर देता है। वसुदेव और महकंस के मिथक आज भी इस व्यवस्था में प्रासंगिक मालूम पडते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में न केवल मनुष्य का बन्धुत्व भाव का भी कोई मूल्य नहीं है। शोषण से कलुषित समाज में शोषण की समस्या को सुलझाने के रास्ते तो है पर उन्हें पल्लवित होने के पहले ही उखाड कर नष्ट किया जाता है। इसलिए हल रूपी बालक जन्म लेने के पहले ही मरता है

''बीमार समाजों के घर में

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ. 305

जितने ही हल है प्रश्नों के

वे हल जीने के पूर्व मरे।''[1]

लेकिन शोषण रूपी राक्षस बालकों का जन्म अधिकाधिक है -

''शोषण के वीर्य-बीज से अब जन्मे दुर्दम

दो सिर के - चार पैर वाले राक्षस-बालक

विद्रूप सभ्यताओं के गर्भ से निकले [2]

जिस प्रकार कारा के कुशाल चौकीदार ने शिवजी को फलों के बक्से में भरकर दक्षिण की ओर ले जाकर मुगल सम्राट के शोषण तंत्र से बचाया उसी प्रकार पूँजीवादी शोषण तंत्र में फँसनेवाले युग वीरों को मुक्त करने केलिए जन में जीवन की तीव्र धार कुशल चौकीदार रहेगा। शोषण के बंदगृह में कैद मेरे मित्र स्वजनों के भाव विचारों तक अपने अनुभव के सारांशों को पहुँचाकर हम एकत्र होकर शोषण तंत्र रूपी लंका का पथ खोज निकालेंगे।

जीवन का बाज़ारीकरण, मात्र मूल्यों का बाजारीकरण नहीं हैं। वह पूँजीवादी संस्कृति का क्रमिक विकास है। उसकी चकाचौंध में वास्तविकता कहीं गुम हो जाती है। मुक्तिबोध को इसका अन्दाजा था। इसलिए उन्होंने लिखा

''दुनिया को हाट समझ

जन जन के जीवन का

माँस काट,

रक्त माँस विक्रय के

प्रदर्शन की प्रतिभा का

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ 303

2 वही 303-304

नया ठाठ,

शब्दों का अर्थ जब

नोच खसोट लूट-पाट'' [1]

नोच खसोट, लूट-पाट पर आधारित इस व्यवस्था के अंर्गत व्यक्ति के आदर्श जीवन मूल्य, स्नेह, प्रेम, श्रद्धा सभी अपनी अर्थवत्ता खोकर एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगती है -

''शब्दों का अर्थ जब

गिन्नी-सा रुपयों-सा,

पैसों सा बोलेगा'' [2]

धन सत्ता पर आधारित यह समाज खुसखोरी, मुनाफा, वैयक्तिक स्वार्थता तथा व्यभिचारी भावों का वाडा है। समझौतावादी आदमी इस व्यवस्था में आदर्श भूलकर आर्थिक लाभ तथा यशप्राप्ति के लिए अपने को बेच देता है।

''वेश्या की देह से

तैरते-उतरते व चढते हुए कम्पभरे

भडकीले वस्त्रों सा

सकुचाता सिहर जाय,

शब्दों का अर्थ जब,

किराये के श्रृंगार-दागों-सा उभर आय आदतन

शैया की चमकीली

चादर-सा फुसकाता हँस जाये,

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ 133

2 वही 129

बिके हुए कमनीय गौर कपोलों पर

पापों के फूलों-सा मुस्काये

शब्दों का अर्थ जब!! [1]

यहाँ पर व्यक्ति का नैतिक पतन होता है। व्यवस्था की यंत्रणाओं में पिसकर सामान्य व्यक्ति उसके शिकंजे में निरापद नहीं रह पाता। सब की कसौटी धन बन जाता है और वह इस व्यवस्था के अंतर्गत मात्र एक कठ पुतली बना रहता है। इसी संदर्भ में मुक्तिबोध का कथन दृष्टव्य है - ''अजीब हालत है कि अब अगर पुरुषार्थ करने जाइए तो मानव विकृति की कारक शक्तियों के हाथों में खेलिए, बिक जाइए और फिर किसी को अपना भगवान बनाकर बुराइयों से समझौते कीजिए। उस भगवान की गोद में बैठ जाइए। और उसी के कन्धे पर चढकर दूसरे गोद में बैठने की तैयारी में, प्रथमत; उसका चरण स्पर्श कीजिए। यह हालत है तथाकथित पराक्रम और पुरुषार्थ की, जिसका हमारे परिवारों में बडा महत्व है, क्योंकि जिसका धन अर्जन जितना अधिक होता है, वह उतना बडा समझा जाता है।''[2] मुनाफाखोरों और उत्पीडकों के इस व्यवस्था में जो आर्थिक लाभ तथा यश प्राप्ति केलिए अपने को बेच देता है वही राजनीति, साहित्य और कला के प्रतिष्ठित महासूर्य बडे बडे मसीहा हो जाते हैं -

''सरकस के जोकर से रिझाते हैं निरंतर

नाचते हैं, कूदते हैं

शोषण में सिद्धहस्त स्वामियों के सामने।

चुपचाप आदर्शों को बाजू रख या भूलकर

---

1 भूर भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ. 129

2 मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध, पृ. 187

अवसरवादी बुद्धिमत्ता गृहण कर

औ ज़िन्दगी को धूल कर

बिल्कुल बिक जाते हैं।''[1]

राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन सभी क्षेत्रों का आदर्श इस समाज में सत्ताधारियों के सामने बिक जाता है। खरीदने का स्वातंत्र्य है धनिक लोगों केलिए। पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित समाज में व्यक्ति के साथ ''हर चीज़ खरीदी और बेची जाती है, जहाँ बुद्धि बिकती है और बुद्धिजीवी वर्ग बुद्धि बेचता है अपने शरीरिक अस्तित्व केलिए, जहाँ उदारवादी उदरवादी की जगह हो जाता है, जहाँ स्त्री बिकती है, श्रम बिकता है वहाँ अन्तरात्मा भी बिकती है।''[2]

मुक्तिबोध की कविता दर असल इतिहास है। उसमें कई हादसे, कई प्रकार के लोग, उनका अन्धापन, समाज पर उनका प्रभाव, सामाजिक संक्रमण, सांस्कृतिक संक्रमण, शोषता के तौर-तरीके निरालंबता का विराट् रूप, दैत्य के समाज जडे शोषक और पुरुष की आकर भंगिमाएँ न जाने कितने आध्याय इस कविता संसार में हैं, गिनना कठिन है। इसलिए मुक्तिबोध कविता कविताई के साथ-साथ इतिहास के ध्वनिपठों का संकलन भी है।

## समझौता पररस्त बुद्धिजीवी

पूँजीवादी समाज में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की भूमिका समझौतावादियों की है। यह मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मुक्तिबोध केलिए चिंता का विषय है। इन लोगों की स्वार्थता,

---

भूरी ... धूल मुक्तिबोध 187

मुक्तिबोध रचनावली पाँच, मुक्तिबोध पृ 174

अप्रतिबद्धता और अकर्मण्यता को वे समाज के पतन का प्रमुख कारण मानते हैं। मुक्तिबोध की राय में सर्वहारा वर्ग जो स्वभावतः अज्ञानी है। लेकिन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी ऐसा नहीं है। उनमें पूँजीवादी साजिशों को सही ढंग से समझने की क्षमता है। सर्वहारा को पूँजीवादी साजिशों का वास्तविक रूप समझाकर उनसे एकता स्थापित कर शोषण व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष जारी रखने का दायित्व इन बुद्धिजीवियों पर है। लेकिन उनकी स्वार्थता, तटस्थता एवं कायरता उन्हें, समझौतावादी और पालायनवादी बनाती है। मुक्तिबोध ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों पर क्षुब्ध होकर उन्हें 'पूँजीवादी उल्लू का साहित्यिक पट्टा' मध्यवर्गीय अवसरवादी केंकडा आदि कहा है। बुद्धिजीवियों की अवसरवादिता उन्हें अपनी क्षमता का उपयोग करने नहीं देती। उनका और उसका ज्ञान यहाँ अनुपयोगी हो जाता है। उनके शब्दों में - ''मध्यवर्गीय समाज की साँवली गहराइयों की रुँधी हवा की गन्ध से मैं इस तह वाकिफ हूँ जैसे मल्लाह समुन्दर की नमकीन हवा से।''[1] बुद्धिजीवियों की स्वार्थी स्वभाव को नाडियों में महसूस करनेवाले मुक्तिबोध ने इस अराजक स्थिति को अपनी कविताओं का मुख्य विषय बनाया है।

'भूल गलती' शीर्षक कविता में असत्य का प्रतिरूप सुलतान गलत सत्ता के खिलाफ लडनेवाले ईमान को कैद कर लाया है। यह दृश्य देखकर दरबार के सब कतार खामोश हैं। दरबार में मनसबदार कविगण, संत, गुरुगण, विश्व भर से ज्ञान भटोरकर विराजमान ज्ञाणी गण, सैनिक अधिकारी, आलिमोफाज़िल, सिपहसालार, सरदार आदि लोगों का कतार है ये लोग ज्ञानी है पढे-लिखे विवेकशील बुद्धिजीवियों की प्रतिनिधि है। लेकिन ये बुद्धिजीवी वर्ग अपनी स्वार्थता के कारण, अपनी ज़िन्दगी सुरक्षित रखने के स्वार्थ उद्देश्य के कारण अत्याचार के विरुद्ध लडने के बजाय वे सब खामोश है

''मनसबदार

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध पृ 68

शयर और सूफी

अलगज़ाली, इब्नेसिन्ना, अल्वरूनी

आलिमोफाज़िल, सिपहसलार, सब सरदार है खामोश!!''[1]

दरबार के सदस्यों की यह खामोशी समकालीन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की खामोशी है। उन्हें सत्ताधारियों की भ्रष्ट क्रूर नीति समझने की क्षमता है। लेकिन इन्होने अपने लाभ केलिए सत्ता से समझौता किया है। बुद्धिजीवियों की यह खामोशी आज ज्यादा प्रासंगिक है।

मध्यवर्गीय सुविधावादी वृत्ति पर चोट देनेवाली एक अन्य कविता है 'एक अंतर्कथा'। इस कविता में एक माँ और पुत्र है। पुत्र कवि है। माँ ने अपने पुत्र के साथ सभ्यता के जंगल में गूमकर सुविधावादी वृक्ष की सूखी टहनियाँ इकट्ठी की है। यह सूखी टहनियाँ शोषित जनसाधारण की प्रतीक है। जिन्हें पूँजीपति वर्ग ने शोषण के बाद उपेक्षित कर दिया हैं। माँ कवि को आधुनिक सभ्यता के सुविधावादी व्यक्तित्व वृक्ष के बारे में समझाती है।

''अधुनिक सभ्यता के वन में

व्यक्तित्व वृक्ष सुविधावादी।

कोमल-कोमल टहनियाँ मर गयीं अनुभव-मर्मों की

यह निरुपयोग के फलस्वरूप हे गया।

अंतर्जीवन के मूल्यवान जो संवेदन

उनका विवेक संगत प्रयोग हो सका वहीं

कल्याणमयी करुणाएँ फेंकी गयीं

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो, मुक्तिबोध, पृ 390-91

रास्ते पर कचरे-जैसी,

मैं चिन्ह रही उनको।''[1]

माँ के अनुसार ये निरी सूखी टहनियाँ भर नहीं है। ये फेकने योग्य नहीं है। इनका सदुपयोग हो सकता है। माँ कहती है -

''घर के बाहर आँगन में मैं सुलगाऊँगी

दुनिया भर को उनका प्रकाश दिखलाऊँगी।''[2]

व्रणित संस्कृति के कचरे से उन्हें बीनकर समाज में प्रतिष्ठित करने और दुनिया भर को उनके आलोक से सत्ता दिखाने की बात वह कहती है। जिन्दगी के कचरे से उन्हें इकट्‌टा कर प्रतिपालन करने का कठिन भार कवि के सिर पर माँ रख देती है। कवि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का प्रतीक है। उनकी असलियत पलायनवादिता की है। इसलिए वह अपना विवेक खो चुका है। अपने दायित्व रूपी मानव शिशु के पालन करने के भार से वह पालायन करता है।

''सच, प्यार उमड आता उप पर

पर, प्रतिपालन-दायित्व भार से घबराकर

मैं तो विवेक खो रहा।''[3]

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की स्वार्थता उन्हें पूँजीवादी अत्याचारों से जनता को मुक्त करने के ऐतिहासिक दायित्व से अलग करती हैं। मध्यवर्गीय चुप्पियों की अवधारणा 'अंधेरे में' कविता में भी है। उसमें कवि ने समसामयिक घटनाओं के काव्यात्मक चित्रण करते हुए तात्कालीन समझौतावादियों का सशक्त चित्रण किया है।

''कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी!!

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो, मुक्तिबोध पृ 142

वही, पृ 142

वही पृ 143

सब चुप साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्

चिंतक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं;

उनके ख्याल से यह सब गप है

मात्र किंवदन्ती है।''[1]

हमारे आसपास की अराजक नपुंसकता से मुक्तिबोध चिन्तित थे। यह नपुंसकता इने-गिने स्वार्थी लोगों की नहीं है। यह समाज के बुनियादी स्वभाव की है। यह नासूर की तरह फैल रही है। यह चिंता मुक्तिबोधीय काव्यसंवेदन के मूल में है।

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी इस व्यवस्था में राजनीति एवं कला, साहित्य जैसे सांस्कृतिक क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त करने केलिए पूँजीपतियों के शोषण में सिद्धहस्त स्वामियों के सामने उन्हें रिझाने केलिए सरकस के जोकर के समान नाचते कूदते हैं। यह वर्ग सभ्यता का ढोंग करता हुआ मानवता त्याग देता है और वह अनुचित निर्धारित मूल्यों, अस्वाभाविक अनैतिक शक्तियों का अपने स्वार्थों के कारण महिमामंडित करता है -

''केवल अहलकार का काम करती हुई

अच्छे कई व्यक्तियों की शक्तियाँ

गहरे न्यस्त स्वार्थों से अनुशासित होती है।''[2]

इस व्यवस्था के पोषक का काम मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी सदैव से करता आया है। पूर्व युगों में वह समाज की इन बुराइयों से लडा करता था और उन बुराइयों के संचालकों को रावण कुंभकर्ण, शैतान कहता था। लेकिन आज उनका स्वभाव बदल गया है। वह उन बुराइयों का पोषक बन गया है -

''पूर्व युगों में भी खूब बुराइयाँ रही आयीं

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो, मुक्तिबोध, पृ. 351

भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध पृ 182

किंतु, वे भीमाकार शक्ति-रूप

दिखलाई जाती थीं

रावण व कुंभकर्ण, शैतान

उनका ही रूप था।

उनसे डरा जाता था, उनसे लडा जाता था।

किंतु उसी अमंगल को आज सिर्फ

सहा जाता ह्रास कह

आज वह मात्र व्यंग्य रूप है

तर्क यह -

हाय!'' [1]

समय के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को इतना आलसी और मौकापरस्त बना डाला है कि कहीं भी उनकी आवाज़ सुनाई नहीं देती है। परिणाम स्वरूप हम यह देखने केलिए बाध्य हो जाते हैं।

''भयभीत मध्यवर्ग भागकर

प्राणों की भिक्षा माँग

खडा हुआ रावण के आँगन में दीन-सा

टिक गया दानवों की भीत के आसरे।'' [2]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल, पृ 11
वही 181

मध्यवर्ग ने अपनी आत्मा को व्यभिचार केलिए समर्पित कर दिया। पूँजीवादी नगरी में सत्ताधीश कौरवों के घर वीर द्रोण, कर्ण, कृप, सात्यकि और भीष्म कुत्ते सा जीवन बिताते हैं -

''इस नगरी में कौरव के घर
वीर द्रोण की थकन भरी है भूरी - भूरी
पीली है सूरत अनचाहों की सेवा में
कुंती-पुत्र कर्ण-कृप - सात्यकि की ग्रीवा में
कुत्ते की गर्दन की पट्टा,
दुःखते हिय से भीष्माचार्यों की मज़बूरी
कौरव के घर।।''[1]

इतना ही नहीं, यश के अभिलाषी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी रावण के घर भिश्तीगिरी करता है -

''यशः लोलुप व्यक्ति की तोजोमयी सत्ता
आधुनिक आदमखोर रावण के घर पर
भिश्तीगिरी करती है।''[2]

श्रमजीवी और बुद्धिजीवी का दुश्मन एक है। लेकिन ये अपनी स्थिति केलिए उत्तरदायी सामाजिक शक्तियों को नहीं जानते। वे अपने दुःख के अनेक कारण ढूँढ लेते हैं। इसलिए अपनी मुक्ति के रास्ते खोजने के प्रयास में वे असफल हैं। किसानों का दुःख यह है कि उन्हें अपने शत्रुओं के विरुद्ध लडने केलिए अपने समान शोषित मित्रों की सहायता नहीं मिलती है। शहरी बुद्धिजीवी मित्रों से वे निवेदन करते हैं

---

1 भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, 151
वही पृ 179

''अपन दोनों भाई है

और दोनों दुखी है

दोनों है कष्ट-ग्रस्त

फिर भी तुम लडते हो हमसे!!

बैलगाडी एक है

और वही हाँकता

सिर्फ एक फर्क है

फर्क आबो हवा का'' [1]

इस कविता में देहाती किसानों की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के चरित्रों का पर्दाफाश भी किया गया है।

समझौतावादी वृत्ति पर दुःखी होकर लिखी गयी कविता है भविष्यधारा। इसमें मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी ठूँठ जैसे ह्रासशील पूँजीपतियों का आश्रय लेते दिखाई देते हैं। लता की तरह इस ठूँठ पर छपाकर वे अपने को सर्वोच्च मानते हैं। पूँजीपतियों के डर के मारे वे अपने अनुभवों को ठुकरा देते हैं। अपने भीतर के सहचारी अनुभवों के निर्णय को सुनने केलिए वे तैयार नहीं है। इसलिए वे अपने अनुभव संवेदनों को त्याग कर अजनबी विचारों के साथ बहे जाते हैं। लेकिन कवि का पूरा विश्वास है कि तमाम बुद्धिजीवी वर्ग पूँजीपतियों के गुलाम बनकर मर नहीं गया है उनमें कुछ की आत्मा अभी जीवित है। कवि उन बुद्धिजीवियों को संबोधित कर उनसे यह जानना चाहता है कि जिस मध्यवर्ग ने सामंतवाद और उपनिवेशवाद के दौर में उनसे संघर्ष कर इतिहास में महत्वपूर्ण गतिशील

---

1 भूरी भूरी हाख धूल मुक्तिबोध, पृ 26-27

भूमिका निभाई थी, जनता का कल्याण किया था। आज उन्होंने अपने अनुभवजनित सत्यों को क्यों उपेक्षित किया है और वे जनविरोधी क्यों हो गये हैं -

''लोगो
एक ज़माने में जो मेरे ही थे;
बहुत स्वप्न-द्रष्टा थे,
कवि थे, चिंतक और क्रांतिकारी थे
क्या हो गया तुम्हें अब
प्रतिदिन कर उपलब्ध सत्य
अब खो देते अगले क्षण ही
निज द्वारा अनुसंधानित होते है अन्तर्हित
बाहरी जिंदगी के हो हल्ले-मेले में
अपने अनुभव के पुत्र गवाँ देते हो क्यों
क्यों बिछुडे तुम अपनों ही से'' [1]

फिर वे अपनी जिज्ञासा का यह कहकर उत्तर देते हैं कि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की आत्मा को जिसने आज लोभ, लाभ-यश, अहंकार द्वारा संघटित और संरक्षित चोर संस्था बदल दिया है वह पूँजीवादी सस्था है। उन्होंने इस कविता में बुद्धिजीवियों के अवसरवाद और आत्महनन का सटीक वर्णन किया है। ये बुद्धिजीवी जीवन की श्यामल खानों से निकाले गये मणि रत्नों को ज़मीन दबा देते हैं। अपने ताज़े जन्मे पुत्रों का या सच्चाई के अनुभवों को चमकदार पथरीली आँखोंवाली उद्दंड चतुर मार्जारी को खाने केलिए सौंप देते हैं। यदि इस शोषण ग्रस्त समाज की करुणा से जब आत्मासत्य का

---

[1] भूरी भूरी हाख धूल मुक्तिबोध पृ. 58

गर्भधारण होती है तो उसे अवैध समझकर एक मूँछवाली डाक्टरनी से सत्य भ्रूण को नष्ट करा देते है अब कवि को निम्न वर्ग की याद आते हैं -

''तुमसे विभिन्न वे मेरे प्रियजन

जो यद्यपि शैल नहीं न शिला-से

भव्य!!

वे साधारण मिट्टी के कण

पर उनमें गतिमय तडित्-बुद्धि उर्मिला

ओ मेरे प्रियजनो

मेरे अपनो

तुम नहीं राजसिंहासनस्त''[1]

लेकिन मेरे प्रियजन तुमसे भिन्न जो यद्यपि पर्वत के जैसे ऊँचा नहीं शिला भी नहीं वे साधारण के कण या जन साधारण है। उनमें तडित जैसी गतिमय और उर्मिल बुद्धि है। मेरे प्रियजन आज तुम सिंहासनस्थ नहीं। भव्य भी नहीं। तुम तुच्छ और क्षुद्र हो। तुममें क्षोभ विद्रोह भरे क्रांतिकारिता निहित है। इसलिए कवि आगे कहते है

''तुम मेरी परम्परा हो प्रिय

तुम हो भविष्य-धारा दुर्जय'' [2]

मुक्तिबोध अपनी परंपरा को स्पष्ट करते हैं। यह वह कवि परंपरा है जिसने अपने शब्दों को समाज केलिए समर्पित किया है। यो जो मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी स्वार्थ लोलुप होकर नष्ट हो रहे हैं, मुक्तिबोध आशा करते हैं कि वे उनकेलिए प्रिय है। वे ज़रूर उनका साथ देंगे। यह मुक्तिबोध की कवि-कामना है।

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध पृ 61

2 वही

## आत्म संघर्ष का इस्पाती दस्तावेज

एक संवेदनशील ईमानदार प्रतिबद्ध कवि आत्मसघर्ष में गुज़रता है। हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष के पीडाभरी दौर से गुज़रनेवाले कवि है। मुक्तिबोध का संघर्ष केवल उनका संघर्ष नहीं बल्कि वर्तमान व्यवस्था के तिलस्मी जाल में फँसकर तडपते मनुष्य का संघर्ष है। आदमी का यह संघर्षभरित जीवन मुक्तिबोध की कविताओं का अंगी विषय है। मुक्तिबोध के साहित्य में प्रकट आत्मसंघर्ष उनका होते हुए भी पूरे मध्य वर्ग का है, पूरे मध्यवर्ग का होते हुए भी उनका है। भीतरी और बाहरी संघर्ष की सही ज़मीन अपनी प्रसिद्ध कविता ब्रह्मराक्षस में हम देख सकते हैं।

ब्रह्मराक्षस पहले मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी था जो आज शहर की एक परित्यक्त बावडी की घनी गहराइयों में रहता है। वह जिंदगी से मुक्ति मिलने केलिए जीवन भर ज्ञान प्राप्त करने में लीन था। लेकिन उनका दुःख यह है कि उसे प्राप्त ज्ञान व्यवहार में ला नहीं सका। इसलिए वह अतृप्त जीवन बिताता है। वह संघर्ष से भरा है। ब्रह्मराक्षस का संघर्ष आज के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का संघर्ष है। अत्याचार से कलुषित इस पूँजीवादी समाज मे प्रयत्न से प्राप्त ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। यहाँ मूल्य है छल-कपट, षड्यंत्र और कुत्सित वृत्तियाँ। नैतिक नियम सिर्फ पूँजीपतियों को हाथ का खिलौना है। जो लोग सच्चाई पर निर्भर है वह अवसर से वंचित हो जाते हैं।

ब्रह्मराक्षस मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का प्रतीक है। व्यवस्था की अमानवीयता से अलग होकर वह अपने अहं की बावड़ी में संघर्ष भरित जीवन बिताता है। इस पाश्विक व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त करने केलिए अहं से निकालकर या आत्मग्रस्तता से ऊपर उठकर बाहर समाज में आकर जनसाधारण से जुडने की उसकी अभिलाषा है। इस व्यवस्था के खिलाफ लडने का, बाहर समाज में जाने की इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाता है

उसको अपनी ज़िन्दगी की कुरबानी देनी पडती है। इसलिए ब्रह्मराक्षस समाज में जाने के अभिलाषा है। लेकिन परिस्थिति अनुकूल नहीं है क्योंकि जो लक्ष्य से बावडी के सीढियों में -

''एक चढना और उतरना,
पुनः चढना औ' लुढकना,
मोच पैरों में
व छाती पर अनेकों घाव।''[1]

बुद्धिजीवी वर्ग साधारणतः सम्मान और आदर चाहता है। लेकिन आज की यह व्यवस्था बुद्धिजीवियों को सम्मान देने के बजाय उन्हें अपमानित कर शोषण करती हैं।

''तिरछी गिरी रवि-रश्मि
के उडते हुए परमाणु, जब
तल तक पहूँचते है कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने
झुक्कर 'नमस्ते' कर दिया।
पथ भूल कर जब चाँदनी
की किरन टकराये
कहीं दीवार पर
तब ब्रह्मराक्षस समझता है
वन्दना की चाँदनी ने
ज्ञान गुरु माना उसे।''[2]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो मुक्तिबोध, पृ 318
2 वही पृ 317

जब सूर्य की किरण बावडी के तल पर पहुँचती है तो ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने उसे झुककर नमस्कार किया है। चाँदनी की किरण दीवार तक आती है तो ब्रह्मराक्षस समझता है चाँदनी ने उन्हें ज्ञान गुरु मानकर वन्दना की है। एक तरफ अपनी आत्मपरकता है। दूसरी तरफ उसकी समष्टिपरक दृष्टि है। वह समाज केलिए समर्पित होना चाहता है। दोनों भावों के बीच वह है -

''पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाठों के बीच
ऐसी ट्राजेडी हे नीच।।''[1]

ब्रह्मराक्षस की यह ट्राजेडी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की ट्राजेडी है। व्यवस्था की पशुता में पिसनेवाले मनुष्य की ट्राजेडी है। आत्मचेतना और विश्वचेतना के बीच का यह वैयक्तिकता और सामाजिकता के बीच का संघर्ष है।

'ब्रह्मराक्षस' की तरह 'अंधेरे में' कविता का रक्तालोक स्नात पुरुष भी ज़िन्दगी के कमरों के अंधेरे में चक्कर लगाता है। वह तिलस्मी खोह में गिरफ्तार है। दूसरी ओर बाहर शहर के पार तालाब में चेहरा फैला है और कमरे में प्रवेश करने केलिए सांकल बजाता है। यह रक्तालोक स्नात पुरुष बाहरी और भीतरी दोनों स्तर पर संघर्ष का अनुभव महसूस करता है। 'अंधेरे में' के युवक का संघर्ष आज की इस भ्रष्ट व्यवस्था में समस्याओं के उलझन में फँसे हुए मनुष्य का संघर्ष है। सुविधा के प्रति समझौता करने में वैमनस्य दिखानेवाले मनुष्य का संघर्ष है।

जिन्दगी के
कमरों में अंधेरे

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो. मुक्तिबोध पृ 320

लगाता है चक्कर

कोई एक लगातार

तिलस्मी खोट में गिरफ्तार कोई एक,

भीत-पार आती हुई पास से

गहन रहस्यमय अन्धकार-ध्वनि-सा

अस्तित्व जनाता

अनिवार कोई एक''[1]

'साँझ रंग ऊँची लहरों में' शीर्षक कविता में एक उलूक है जो एक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है। उसे कवि ने पूँजीवादी सभ्यता का परमदयनीय प्राणपुत्र बुलाया है। वह पूँजीवादी सभ्यता का अमानवीय रूप पहचान सकता है। पर वह कर्महीन है। वह भी ब्रह्मराक्षस की कोटि का मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है। युद्धोत्तर विश्व के रक्तिम जन संघर्षो की घाटी में भ्रष्ट व्यवस्था के अमानवीयता से स्तब्ध कालांतर में उपस्थित सत्य का प्रतिरूप अंगार चन्द्र को वह देखता है। साथ ही वह पूँजीवादी व्यवस्था की मीनार को भी देखता है।

''मस्तिष्कवान होकर भी मैं कितना अशक्त

कितना असंग, असहाय, पोच

सुज्ञात यद्यपि गंभीर सत्य

कालांतशील,

मानवी मुक्ति समता-संस्कृति आत्मशक्ति

---

1 मुक्तिबोध रचनावली दो सं. नेमीचंद्र जैन, पृ. 320-321

संहारशील निर्माण शील,

मैं किन्तु हाय! भग्नावशेषवासी विहंग।'' [1]

ब्रह्मराक्षस की तरह यह उलूक सी अपनी असमर्थता में बेचैन है। वह आगे सोचता है ह्रासशील पूँजीवादी सभ्यता के इस तांत्रिक जाल में, मैं अपनी अभिलाषा के विरुद्ध बन्धा हुआ हूँ। संहारात्मक बुद्धि लिये, पर कर्महीन हूँ। ह्रासशील पूँजीवादी संभ्यता के दोषों, अपराधों, तथा सभी सीमाओं का मैं प्रतीक हूँ। इस प्रकार सोचकर आत्मालोचन करते समय वह धधकता हुआ लाल अंगार-चंद्र तुरंत ही वह भग्नावशेष विस्तारों पर अपना आलोक जाल फैलाने लगता है। जनजीवन के उद्वेगों का गंभीर सत्य वह अंगार चन्द्र उलूक के मस्तक में भी व्याकुल तडित नृत्य करने लगता। परिणामस्वरूप उलूक का व्यक्तित्वावतरण होता है -

''मेरा यह अस्तित्व घोर

हो जाय भस्म यह एकाकी मस्तक कठोर!!

विध्वंसों की भूरी छाया

में पली हुई इस आत्मचेतना के निधान

श्यामल-श्यामल

गहरा-गहरा गंभीर ध्यानवाला

उलूक-व्यक्तित्व हाय!

मिट जाय और

इस स्तब्ध धधकते हुए लाल

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध. पृ 210

अंगार-चंद्र में सिमट जाय!!''[1]

इस प्रकार आत्मसंघर्ष से उत्पन्न आत्मालोचन से वह विश्व चेतस हो जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था का कुटिल जाल तोडकर वह भाग जाता है। व्यवस्था उसे देशद्रोही मान लेती है। उलूक के प्रयाण से वे समझ लेते हैं कि उनका अंत निकट आ गया है। जनता के मुक्ति-अभियान के निर्णायक दौर पर पहुँच वह जाता है। धरती अपनी धुरी पर तिगुनी गति से घूमने लगती है। यह युग परिवर्तन का सूचक है।

''चाँदनी भरे नभ में युगांत
का उठा घोर
उल्लास-घोष।
जनजीवन की संबंध व्यथा
फिर हुई कथा की एक बात
मुक्ति के मधुर उद्धत मुख पर
खिल उठी धूप खिल उठा प्रात!!''[2]

मुक्तिबोध की कविता का तनाव इसी आत्मसंघर्ष का उत्परा है। परन्तु उनका तनाव व्यक्तिकेन्द्रित नहीं है। वह समाज केन्द्रित है। इतिहास केन्द्रित है। इस धारणा से उनकी कविता सरलीकरण का विरोध करती है।

**पथ भ्रष्ट साहित्यकार**

पूँजीवादी व्यवस्था में साहित्यकार भी अपनी दिशा भूल चुका है। पथ प्रदर्शक होने योग्य वह पथ भ्रष्ट करनेवाले हो गया है। अपने वर्ग छोडकर उच्च वर्ग में शामिल होने की प्रेरणा से वह वशीभूत है। इस प्रयाण में वह अपने आपको भूलता है। अपनी

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ 213-14
भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध पृ. 217

सहजीवियों को भी। वह पूँजीपति सत्ताधारियों को रिझाने केलिए अपना साहित्यिक आदर्श भी छोड देता है। पूँजीवादी व्यवस्था में साहित्य केवल धनार्जन का माध्यम बन गया है।

कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जो निम्न तबक के हैं। मगर वे उच्च मध्यवर्गीय मनोहर दीप्ति के सम्मोह में स्वजनों-परिजनों को भूल चुके हैं। अपनी स्वार्थ दुनिया में वे पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक बन गये हैं। उनका लक्ष्य है तथाकथित सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रगति। ऐसे साहित्यकार अपने ही लोगों से दूर, अलग और अजनबी हो जाते हैं। मुक्तिबोध ने पूँजीवादी आश्रयान्वेषी साहित्यकारों को पूँजीवादी उल्लू का साहित्यिक पट्ठा संबोधित कर लिखा -

''पूँजीवादी उल्लू के साहित्यिक पट्ठे
राजनैतिक रात में -
ऊँचे किसी छप्पर का आसरा लिये हुए
(रात) चीखा करते हैं

पूँजीवादी उल्लू के साहित्यिक पट्ठे
सुनसान रात में अहं-गर्भ वासना से चीखा करते प्रात तक
जीवन के खण्डहरों के सुनसान साये में
व्यभिचारी भावों के दृश्यों को उभारकर
आदर्श बघारते हैं'' [1]

---

1 भूरी भूरी खाक धूल. मुक्तिबोध. पृ 179

इस कविता का पूँजीवादी उल्लू सत्ताधारी पूँजीपति है। सत्यधारियों के आश्रयान्वेषी साहित्याकार अनैतिक ढंग से ऊँचाई तक पहुँचने केलिए चीखा करते है। वे अपने साहित्य में व्यभिचारी भावों के दृश्यों को उभार कर सिर्फ आदर्श बधारते है। इस व्यवस्था में पूँजीपतियों के आश्रयान्वेषी व्यवस्थावादी साहित्यकार अप्रतिबद्ध है, ये 'जब सत्यों के कूप से'[1] पानी सींचना चाहते हैं तब पानी से नहीं निकाल पाते लेकिन 'जल के साथी दुर्दुर मुखर मसखरे प्रखर स्वरूप'[2] में निकल आते हैं, ये लोग संस्कृति, जीवन और मानव के भी नाम ज़रूर लेते हैं। 'यश के चोर व् प्रतिभा के कुलटा भी भैया-दूज है, हिय की कोमल त्वचा-त्वचा पर अहंकार की सूज है।'[3] आज साहित्य और कला के प्रतिष्ठित व्यक्ति पूँजीपतियों की खिलौना मात्र हैं। वे शोषण में सिद्धहस्त पूँजीपति सत्ताधारियों के सामने सरकस के जोकर बनकर नाचते हैं कूजते हैं। 'जिन्दगी का रास्ता' का रामू साहित्यिक आदर्शों में हुए विघटन पर विचार करते हुए अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि -

''आज के समाज में
दूषित उपलब्धि तक पहुँचने केलिए भी
रास्ते टेढे-मेढे हैं'' [4]

'ओ कलाकार' शीर्षक कविता में वास्तविक कलात्मक गुण के तिरस्कृत करनेवाले सत्ताधारियों के आश्रयान्वेषी कलाकारों का चित्रण करते हुए उनके हाथों से कला की मृत्यु का वर्णन है

''तू भेद देखता जाता था

---

1 74
पृ 74
भूरी भूरी खाक  मुक्तिबोध  74

वही  पृ 187

अपने में केवल रहा खेद

रेशमी शब्द के जालों में

मर गयी कला, आत्मा-निहार'' [1]

आज के साधारण मनुष्य का वास्तविक रूप कमज़ोर देह और साधारण तन का सरल रूप है। तुम उस सरल कमज़ोर चित्रण के स्थान पर रेश्मी शब्द के जालों से कला को फँसाकर उसे मृत्यु की ओर खींच लेते हो। इसलिए पूँजीपतियों का आश्र्यान्वेषी कलाकार की ओर इशारा करते हुए कवि कहते हैं -

''ओ आत्मा के नित्य भक्त

तू आत्मा से है निसंग।'' [2]

कमज़ोर मनुष्य या आत्मा के उद्धार का आदर्श रखते कलाकार आज वास्तविक कमज़ोर मनुष्य से, जनसाधारण से दूर होकर विलासित जीवन बिताने केलिए शोषक उच्च वर्ग में जुडते हैं। उनकी रुचि के अनुसार कला के शाखाओं को परिवर्तित करते हैं। मुक्तिबोध की कविताओं में आदर्श साहित्यकारों का चित्रण है।

'मेरे युवजन मेरे परिजन' शीर्षक कविता में एक लेखक श्यामल गंभीर बृहत पक्षी के रूप में जो युगानुयुग पापदृश्य दर्श है। सिर पर मंडराता है। उस पक्षी के संवेदनमय स्वर में जनसाधारण की व्यथा कथा निवेदित है।

''मैं लेखक हूँ

प्रतिपल युवजन-व्यक्तित्व अध्ययन करता हूँ'' [3]

---

1 मुक्तिबोध: रचनावली एक सं नेमीचंद्र जैन पृ 84

2 मुक्तिबोध: रचनावली एक मुक्तिबोध, पृ 84

3 भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ. 78

मुक्ति प्राप्ति केलिए जन साधारण के प्रयत्न की किरणों को गिनने का यत्न करता है। 'दमकती दामिनी' शीर्षक कविता में एक कवि है जो मार्क्सवादी है वह मुक्तिबोध का ही प्रतिरूप है जो अपने को क्रांति युग का एक छोटा कवि कहते हैं -

''मैं हूँ क्रांति युग का एक छोटा कवि''[1]

कवि का हृदय रात दिन युग क्रांति के क्षोभ से जल रहा है। यह विक्षोभ अंत में कवि-संकल्प बनकर लहरा रहा है। लेकिन इस व्यवस्था का साहित्यकार यदि ईमानदार हो तो उनकी स्थिति बडा शोचनीय है। जो साहित्यकार पूँजीवादी शोषकों से समझौता न कर उनकी कुत्सित वृत्ति का विरोध करते हैं तो उनकी जिन्दगी शापग्रस्त होती है। यदि कोई कलाकार जनता की मुक्ति का रास्ता ढूँढता है तो वह इस व्यवस्था में फिट नहीं। अंधेरे में कविता में रात को कलाकार की हत्या होती है -

खूनभरे बाल में उलझा है माथा,
भौंहो के बीच में गोली का सुराख,
खून का परदा-सा गालों पर फैला,
होठों पर सूखी है कत्थई धारा,
फूटा है चश्मा, नाक है सीधी,
ओफो। एकान्त-प्रिय यह मेरा
परिचित व्यक्ति है, वही, हाँ,
सचाई थी सिर्फ एक अहसास
वह कलाकार था ''[2]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली एक -मुक्तिबोध, पृ. 151
2 मुक्तिबोध रचनावली दो, मुक्तिबोध, पृ 343

सुकुमार मानवीय हृदयवाले कवि केलिए ज़िन्दगी एक स्वप्न मात्र है। 'मध्य-वित्त' शीर्षक कविता में आज के कलाकार का यथार्थ चित्रण अंकित किया गया है -

''बेच रहा है कालिदास सडकों पर कंधी
लगा चाय दूकान यक्ष सबका है संगी।
विरहिणी भार्या धन-कुबेर घर रंग-बिरंगी।''[1]

कालिदास के जैसे प्रतिभासंपन्न कलाकार आज आर्थिक अभावग्रस्त जीवन बिताता हैं। यक्ष जो पूर्व युग में कुबेर के विराट धन का रखवाला था आज वह चाय की दूकान चलाता है। साहित्य को लेकर तथा साहित्यकार को लेकर जो विकल्प मुक्तिबोध के मत था वह सटीक और पारदर्शी था। इसलिए कहीं भी कोई रचनेवाला व्यक्ति पथभ्रष्ट होता दिखाई देता है तो मुक्तिबोध क्षुब्ध नजर आता है। विकल्पहीन समाज के ह्रास से वे क्षुब्ध दीखते हैं।

**नारी शोषण का चित्र**

नैतिकता की दृष्टि से भी यह एक ह्रासशील व्यवस्था है। पूँजीवादी ढाँचे में रचे-वसे परिवारों में नारी की स्थिति प्रताडित होने के साथ-साथ दयनीय भी होती है। ऐसे में नारी खतरनाक जिन्दगी बिताती है।

''धुग्धू का स्वर सुन
नारी का मन पीले पत्ते-सा काँपता,
रोगग्रस्त बालक की साँस टूट जाती है।
रोती है धाड़मार
आँसू-भरी छाती नयी बहु की।''[2]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली -एक मुक्तिबोध पृ. 205
भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, पृ 179

भारतीय परंपरा के अनुसार नारी सम्मान का पात्र है। पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीवादी धुग्धुओं का स्वर सुनकर नारी काँपती है तथा मार लगने से रोती हुई बहू की छाती आँसू से भरती है। कभी नारी अपना विवेक खो देती है।

''सामन्ती घराने की जागीरदार
बूढी-सी सास ज्यों
स्वयं पिशाचिनी का प्रचण्ड रूप ले
विद्रोहिणी विधवा निज बहु की पीटी गयी
पीठ पर बैठकर
जबर्दस्त हाथ में''[1]

उत्पीड़ित नारी का चित्रण मुक्तिबोध की कई कविताओं में विद्यमान है। शोषण का सबसे बडा शिकार श्रमशील वर्ग की नारी है -

''आँखों में तैरता है चित्र एक
उर में संभाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है वज़नदार घडों से,
कपडों को धोती है भाड-भाड,
घर के काम बाहर के काम सब करती है,
अपनी सारी थकान के बावजूद।
मज़दूरी करती है
घर की गिरस्ती केलिए ही

---

1 भूरी भूरी खाक धूल मुक्तिबोध, पृ. 184

पुत्रों की भविष्य के लिए सब

उसके पीले अवसाद भरे कृश मुख पर

जाने किस (धोखे-भरी?) आशा की दृढता है।

करती वह इतना काम

क्यों किस आशा पर?''[1]

श्रमजीवी नारी का यह एक यथार्थ चित्रण है। वह गर्भवती है। सारी थकान भूलकर वह घर का और बाहर का काम करती है। संतान के भविष्य केलिए और घर की गृहस्थी केलिए। 'क्यों किस आशा पर' वह इतना काम करती है? मुक्तिबोध का यह सवाल आज भी नारीवादी कवियों की कविताओं में तीक्ष्ण है। इस सवाल के जवाब हमारे समझ में नहीं आएगा। इस आनुत्तरित स्थिति में नारी शोषण का व्यापक इतिहास सम्मिलित है।

**शोषित बाल-समाज**

बच्चों पर किये जानेवाले अत्याचार आज के पूँजीवादी समाज की एक ज्वलंत समस्या है। बच्चों की कष्टदायक जिन्दगी के कई चित्र मुक्तिबोध की कविताओं में है। 'जिन्दगी का रास्ता' कविता का बच्चे का चित्र देखिए -

''किंतु, हाय! गरीबिन माँ ने ही बेचे हुए,

खाते हुए मार और करते हुये काम नित,

उदास पाँच-बरस के बालक के

---

1 मुक्तिबोध रचनावली एक मुक्तिबोध, पृ 239

दर्दभरे फटे-हाल जीवन-सा जिसमें

पुचकार का रस

(और प्रोत्साहन) मिल ही नहीं, फिर भी

पढने के शौक और

जानने की चाह ने

मुसीबतें बढा दी।''[1]

बच्चों की शिक्षा तथा संरक्षण का दायित्व सिर्फ माँ-बाप पर निर्भर नहीं, बल्कि उसे उठाने का दायित्व समाज पर भी है। देश का भविष्य बच्चों पर निर्भर है। पूँजीवादी व्यवस्था बच्चों को संरक्षण और प्रोत्साहन देने के बजाय उसे उनका सेवक बनाती है। नारी शोषण के समान बाल-समाज का शोषण भी समाज की गंभीर समस्या है। समाज की कल्याणकारी परिभाषाएँ जब अर्थहीन हो जाती है तो बच्चे भी अरक्षित हो जाते हैं। यह सिर्फ बच्चों का अरक्षित होते जाना नहीं है। यह समाज की नैतिकता का लुप्त हो जाना है। इसे मुक्तिबोध गंभीर पतन मानते हैं।

मुक्तिबोध समय के यथार्थ के कवि है। पर अपनी कवितागत संरचना में यथार्थवादी भी वहीं रहे। इसका कारण यही है कि वे यथार्थ के एकायामी पक्ष के रचनाकार नहीं है। वे सदैव यथार्थ के आगे निकल जाते हैं। यथार्थ के चिह्नित तथा अचिह्नित पक्षों को भाँपते हैं। इस कारण से यथार्थ को फैंटेसी रूप में तब्दील करके बृहत्तर यथार्थ को कविता वस्तु में परिणत करते हैं। इस अर्थ में मुक्तिबोध की कविता हमारे यथार्थ की कविता है, हर समय वह हमारे यथार्थ के रूप की नज़र आती है।

---

1 भूरी भरी खाक धूल मुक्तिबोध. पृ 178

अध्याय पाँच

# मुक्तिबोध की कहानियों का विश्लेषण

## हिन्दी कहानी और मुक्तिबोध

कहानी के क्षेत्र में मुक्तिबोध विशेष रूप से आलोकित एवं विवेचित होने योग्य कहानीकार है। लेकिन आलोचकों के बीच मुक्तिबोध लगभग अपरिचित है। इसलिए उनके जीवन काल में उनकी कहानियों से संबंधित समीक्षाएँ कम ही प्रकाशित हुई है। वे मूलतः कवि एवं समीक्षक के रूप में बहुचर्चित रहे। पर उन्होंने लिखा है कि कविता-लेखन के साथ साथ कहानी-लेखन भी चलता रहा। कवि के रूप में आज उनका स्थान जितना महत्वपूर्ण है उतना उनके अन्य रचना पक्ष स्वीकृत नहीं हुए हैं; खासकर उनका कथाकार पक्ष। तारसप्तक के वक्तव्य में उन्होंने इसका संकेत किया है - समय समय पर उनकी कहानियाँ पत्रिकाओं में छपती रही।

यद्यपि मुक्तिबोध अपने कहानी-सृजन का आरंभ 1936 में हुआ फिर भी उनकी कहानियों के दो ही संग्रह काठ का सपना (1967) और सतह से उठता आदमी (1971) प्रकाशित हुए हैं। उनकी पहली कहानी 'खलील काका' 5 अक्टूबर 1936 में रचित है तो प्रकाशन की दृष्टि से उनकी 'आखेट' तीसरे कहानी अक्टूबर 1938 की वीणा में 'मानवी पशुता' के नाम से सबसे पहले प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार मुक्तिबोध के अपने कहानी लेखन का श्री गणेश 1936 में किया। यह एक महत्वपूर्ण वर्ष है। प्रेमचंद का निधन तथा एक विशिष्ट काव्यधारा (छायावाद) के अंत के साथ प्रगतिवादी, यथार्थवादी युग का आरंभ इसी समय होता है। साहित्यकार पर समसामयिक युग का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। मुक्तिबोध में भी समसामयिक कहानी का आलोक पुरुष प्रेमचंद का प्रभाव है।

### प्रेमचंद युगीन कहानी और मुक्तिबोध

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के प्रथम कहानीकार है जिन्होंने कहानी साहित्य को मनोरंजन के पूर्वनिश्चित ढाँचे से मुक्त किया। अपने युग की माँग के अनुकूल उसे समाज

से जोडा और सामाजिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए कहानी को नया आयाम प्रदान किया। उनकी हर कहानी के मूल में समाज के, विशेषकर ग्रामीण समाज के, असंख्य शोषित पीडित एवं दलितों का स्वर है। सामाजिक यथार्थ को अंकित करते समय प्रेमचंद कहानीकारों ने परिवेश और पात्रों को अपने स्व में अन्वेषित करके कार्य किया है।

मुक्तिबोध की 'अखेट' 'खलील काका' और 'वह' शीर्षक कहानियाँ प्रेमचंद युगीन प्रभाव से युक्त हैं। 'आखेट' और 'खलील काका' सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज है। समाज के दलित शोषित और चोट खाने के लिए अभिशप्त जनसाधारण की विपन्न स्थितियों की अभिव्यक्ति इन कहानियों में हुई है। 'वह' में सामाजिक स्वाधीनता के भाव के साथ नारी को मानवी रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी किया गया है। कथा का निश्चित घटना-क्रम प्रेमचंद की कहानियों के समान है। मुक्तिबोध की इन प्रारंभिक कहानियों में कहानी के पुराने रचना-विधान का प्रभाव पूर्ण ढंग से ही अपनाया गया है। आदर्शोन्मुख यथार्थ का परिचय देनेवाली इन कहानियों में कहानीकार का व्यक्तित्व भी प्रतिफलित है। यद्यपि इस युग में संख्या की दृष्टि से उन्होंने अधिक कहानियाँ न लिखी फिर भी समय के अनुसार यथार्थ और उसके परिप्रेक्ष्य को समझने में वे समर्थ हुए हैं और उनकी कहानी की चर्चा प्रेमचंद युगीन कहानी की चर्चा के दौरान सार्थक लगती है।

## प्रेमचन्दोत्तर युग और मुक्तिबोध

प्रेमचंदोत्तर युग व्यक्तियुक्त धारा की कहानियों का युग है। यह प्रृत्ति मोटे तौर पर जैनेद्र, अज्ञेय, जोशी जैसे कहानीकारों में प्रत्यक्ष होने लगी। इन कहानीकारों के साथ वैयक्तिकता का दौर शुरू होता है। साथ ही साथ सामाजिकता की एक अलग धारा बनी जो यशपाल विष्णु प्रभाकर, राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे कहानीकारों के माध्यम से विकसित होती है। इस प्रकार प्रेम्चंदोत्तर युग में दो धाराएँ विद्यमान है।

प्रेमचंदोत्तर युग में तत्कालीन अंतर्राष्ट्रीय एवं राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियाँ और मनोविज्ञान, दर्शन आदि विषय प्रेरणामूलक रहे हैं। बंगाल के अकाल तथा द्वितीय

महायुद्ध के आरंभ ने भारत की सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों में खतरनाक वातावरण उत्पन्न किया। संवेदनशील लेखकों पर इन सबका असर सर्वाधिक पडा। इन परिस्थितियों ने आधुनिक मानव को एक नया भावबोध प्रदान किया। कई परंपरागत मूल्य टूटने लगे। लेकिन विघटित मूल्यों के स्थान पर नयी मूल्य-स्थापना नहीं हो पायी। बौद्धिक जागृति के कारण परंपरागत विश्वासों टूटने लगे। इस नये वैचारिक उत्थान के कई संकेत इस दौर की कहानियों में दिये हैं।

फ्रायड, एडलर, युंग जैसे मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को आधार बनाकर जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय और जोशी कहानियाँ लिखने लगे। उन्होने व्यक्ति को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में मानकर उसके अंतश्चेतन का रहस्योद्घाटन करने की मनोवैज्ञानिक रीति अपनाई। नैतिक मान्यताओं, सामाजिक आदर्शों और परंपराओं के प्रति भी इनका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण था।

इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाली राजनीतिक क्रांतियों ने भी इस युग के कहानीकारों को नयी विचारधारा प्रदान की है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय प्रभाव रूस की क्रांति का रहा जिसके परिणामस्वरूप मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी तथा साम्यवादी विचारधारा का प्रचार प्रसार हुआ। कुछ कहानीकारों ने इस विचारधारा पर आधारित प्रगतिवादी कहानियाँ लिखी। इन कहानियों में यथार्थ पर आधारित भौतिकता को आदि सत्ता के रूप में स्वीकारते हैं। मनुष्य को अपने यथार्थ में प्रतिष्ठित करने का प्रयास इन कहानियों की खास विशेषता थी। आर्थिक शोषण तथा पूँजीवाद का विरोध और सर्वहारा के प्रति सहानुभूति, वर्ग संघर्ष के माध्यम से नवजागरण आदि पर ये कहानीकार ज़ोर देने लगे। सामाजिक उपादेयता की दूसरी आवृत्ति प्रेमचंद युगीन कहानियों के बाद इनकी कहानियों में हुई है। यशपाल का 'पराया सुख' 'होली नहीं खेलता' उपेन्द्र नाथ अश्क का 'पलंग' 'पिंजरा' 'डाची' आदि प्रगतिवादी सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृत राय आदि की एक लंबी परंपरा ने प्रेमचंदोत्तर सामाजिक कहानी धारा को पुष्ठ करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इस युग के कहानीकारों के समकक्ष मुक्तिबोध भी खड़े होते हैं। फिर भी उनकी कहानियों की चर्चा तद्युगीन कहानी आलोचना में नहीं आयी है। उन्होंने प्रेमचंदोत्तर काल में अर्थात् 1940-50 के बीच की अवधि में चार पूर्ण कहानियाँ लिखी है, संख्या की दृष्टि से यह भी बहुत कम है। लेकिन प्रवृत्तिगत विश्लेषण के लिए तथा तद्युगीन प्रभाव के विश्लेषण के लिए इतनी रचनाएँ पर्याप्त हैं। इस युग की उनकी कहानियों में 'मोह और मरण' नामक कहानी 1940 जनवरी की वीणा में प्रकाशित हुई थी 'मैत्री की माँग' और 'उपसंहार' नामक कहानियों का रचनाकाल यथाक्रम 1942 और 1950 माना जाता है। 1950 के आसपास रचित 'प्रश्न' नामक कहानी 1956 अक्तूबर की नया खून नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। वैयक्तिक छाप की कहानियों की रचना भी उन्होंने की है। इसका स्पष्ट संकेत उनके इस वक्तव्य में प्राप्त है 1936 से 42 के पाँच साल मानसिक संघर्ष और बर्गसोनीय व्यक्तिवाद के वर्ष थे आंतरिक विनष्ट शांति के और शारीरिक ध्वंस के इस समय में मेरा व्यक्तिवाद कवच की भाँति काम करता था बर्गसाँ की स्वतंत्र क्रियमाण 'जीवन शक्ति' (élan vital) के प्रति मेरी [illegible] थी परिणामतः काव्य और कहानी नये रूप प्राप्त हुए भी अपने ही [illegible] उनकी गति ऊर्ध्वमुखी न थी।[1] मुक्तिबोध की व्यक्तिवादी दौर की कहानियाँ पूर्णतः व्यक्तिवादी नहीं है यह कहना उचित होगा कि मुक्तिबोध की कहानियाँ मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का सफल प्रमाण है उनकी संवेदनात्मक दृष्टि मध्यवर्गीय [illegible] जीवन पर जितनी पड़ी उतनी गहराई और तन्मयता के साथ उसका चित्रण [illegible] 'मोह और मरण' 'प्रश्न' आदि कहानियों में किया है

[illegible] मुक्तिबोध

सन् 1950 के आसपास नयी कहानी का आरंभ होता है [illegible] परंपरागत सामाजिक मूल्यों का विघटन हुआ आर्थिक संकट [illegible] औद्योगीकरण शहरीकरण आदि के कारण कई प्रकार की समस्याएँ सामने आने लगी

---

1. तार सप्तक, अज्ञेय पृ 6

मनोवैज्ञानिक तथा प्रगतिवादी कहानी मनुष्य की समस्याओं का यथार्थ उसकी असलियत में पेश करने में लगी रही। इसी समय कहानी के क्षेत्र में नयी मानसिकता से युक्त कहानीकार सामने आने लगे। मोहन राकेश, कमलेश्वर जैसे कथाकारों ने शहरी परिवेश को लेकर कहानियाँ लिखीं तो फणीश्वरनाथ रेणु और शिवप्रसाद सिंह की दृष्टि अंचल विशेष की ओर गयी। निर्मल वर्मा, कृष्णबलदेव और उषा प्रियंवदा ने यथार्थ के अंतर्राष्ट्रीय स्तर को प्रक्षेपित किया। कहानी अधिक प्रामाणिक होने लगी।

आज का कहानीकार छोटी सी छोटी मानवीय क्रियाओं को पूरी शक्ति से अपनी रचनात्मक प्रक्रिया में अनुभव करता है और छोटी से छोटी छवि या दृश्य में वह सामान्य अविच्छिन्न जीवंतता का मर्म पकडकर अभिव्यक्ति देता है, जो वर्तमान को भूत और भविष्य की इकाई में जोडता है।[1]

मुक्तिबोध ने नयी कहानी में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनके कहानी-संसार का पूरा विकास इसी दौर में हुआ। अर्थात् 1950 से 64 तक की अवधि में उन्होंने प्रेमचंद और प्रेमचंदोत्तर युग की अपेक्षा अधिक संख्या में कहानियाँ लिखी हैं। इस दौर में उन्होंने 17 पूर्ण कहानियाँ तथा 12 अपूर्ण कहानियों का सृजन किया है।

पूर्ण कहानियों के नाम, रचनाकाल और पत्रिकाओं के नाम यथाक्रम निम्नलिखित है।

| नं | नाम | रचनाकाल | पत्रिका |
|---|---|---|---|
| 1. | एक दाखिल दफ्तर सांझ | 1948-58 के बीच | साप्ताहिक हिंदुस्तान, नवंबर 1968 |
| 2. | ज़िंदगी की कतरन | वही | - |
| 3. | अंधेरे में | वही | हंस |
| 4. | चाबुक | - | - |
| 5. | उपसंहार | 1950 (संभावित) | - |
| 6. | नई ज़िन्दगी | - | प्रवाह 1953 मार्च |

[1] नई कहानी संदर्भ और प्रकृति सं. डॉ देवीशंकर अवस्थी, पृ 112

| | | | |
|---|---|---|---|
| 7. | ब्रह्मराक्षस का शिष्य | 1957 जनवरी | नया खून, जून 27 1957 |
| 8. | भूत का उपचार | 1957 (संभावित) 1968 में प्रकाशित | कल्पना, अगस्त 1968 |
| 9. | समझौता | 1959 के बाद(संभावित) | नई कहानी, अगस्त 1967 |
| 10. | पक्षी और दीमक | 1959 के बाद(संभावित) | कल्पना, दिसंबर 1963 |
| 11. | क्लाड ईथरली | 1959 के बाद(संभावित) | - |
| 12. | जलना | 1960 के आसपास(संभावित) | धर्मयुग अप्रैल 1968 |
| 13. | काठ का सपना | 1950 (उत्तर) | कल्पना, अप्रैल 1963 |
| 14. | सतह से उठता आदमी | 1963-64(संभावित) | |
| 15. | विद्रूप | वही | |
| 16. | जंक्शन | वही | |
| 17. | विपात्र | वही | ज्ञानोदय, 1965 |

अपूर्ण या अप्रकाशित कहानियों में से कुछ के शीर्षक स्वयं मुक्तिबोध के दिये हुए है कुछ इस संपादक द्वारा सात अपूर्ण कहानियों को अधूरी कहानी 1-7 शीर्षकों से रखा गया है, क्योंकि उनका कोई शीर्षक देना उचित नहीं लगा।[1] अधूरी कहानियों के नाम और संभावित रचनाकाल मुक्तिबोध रचनावली खण्ड 3 में यों दिये गये हैं।

1 अधूरी कहानी - चार 1950-51 के आसपास

2. अधूरी कहानी - पाँच वही

[1] मुक्तिबोध रचनावली 3, मुक्तिबोध पृ 11

| | | |
|---|---|---|
| 3. | बाबू रामचन्द्र अग्रवाल | वही |
| 4. | नाग नदी के किनारे | 1955-56 |
| 5 | भटनागर | 1957 |
| 6. | तिलिस्म | 1957-58 |
| 7 | अधूरी कहानी - छह | वही |
| 8. | न घर मेरा, नाघर मेरा चिडिया रैन बसेरा | 1962 |
| 9 | बडी सडक और पिछवाडा | 1963-64 |
| 10. | अधूरी कहानी - सात | अनिश्चित रचनाकाल |
| 11. | मेरा मित्र | - |
| 12. | महापुरुष | - |

मुक्तिबोध की 1950 के बाद की कहानियों में यथार्थ की जडों को गहराई से पहचानने का प्रयास उपलब्ध है। मध्यवर्ग ही उनकी इस दौर की कहानियों के केंद्र में है। बौद्धिक जाग्रता के कारण कहानी क्षेत्र में वे अन्य कहानीकारों की अपेक्षा एक कदम आगे हैं। विश्वंभरनाथ उपाध्याय के शब्दों में नई कहानी और अन्य अनेक आंदोलनों में भटकती, हिन्दी कहानी को मुक्तिबोध की कहानियों से अब भी रास्ता मिल सकता है क्योंकि वह सामाजिक यथार्थ के प्रामाणिक अनुभव की कहानियाँ है।[1]

संक्षेप में यह कहा सकता है कि प्रेमचंद युग, प्रेमचोदोत्तर युग तथा नयी कहानी युग की हिन्दी कहानी मुक्तिबोधीय संस्पर्श से युक्त है। जिस प्रकार वे नयी कविता तथा समकालीन कविता का पथ प्रदर्शक है। उसी प्रकार वे कहानी के क्षेत्र में भी पथप्रदर्शक हैं।

## मुक्तिबोध का कहानियों का कथ्य परिदृश्य

मुक्तिबोध का कहानी-संसार वैयक्तिकता की सुदृढ बुनियाद पर निर्मित एक बृहत सामाजिक संस्था है। यह संस्था इतना विशाल है कि संस्कृति का प्रत्येक क्षेत्र इसका

---

[1] समकालीन सिद्धान्त और साहित्य विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 196

एक-एक हिस्सा है जो देशीय संस्कृति की सीमा को लांघती भी है। यह सुदृढता और विशालता उनकी कहानियों को तद्युगीन प्रचलित वैयक्तिक तथा सामाजिक कहानियों से पृथक कर एक खास सार्थकता प्रदान करती है। व्यक्ति की मदद से एक पूर्ण समाज निर्माण का शौक उनकी कहानियों को सर्जनात्मकता प्रदान करता है। उन्होंने अपनी कहानियों में निम्न मध्यवर्ग को अपनी चिंता का विषय बनाया। उन्होंने एक वैज्ञानिक शोधक की तरह उनकी भीतरी तथा बाहरी मनोवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। मध्यवर्ग की जीवन परिस्थितियाँ उनको स्वर्थ से उत्पन्न कमज़ोरी, उनकी महत्वाकांक्षाएँ आदि विषयों पर उनकी गतिशीलता उनकी कहानियों की खास विशेषता है। अतीत और भविष्य को ध्यान में रखते हुए तता युग परिवर्तन और समय की आवश्यकताओं को मानते हुए उन्होंने कहानियाँ लिखी। कृष्ण मुरारी मिश्र के शब्दों में ''मुक्तिबोध का कथा साहित्य उनकी समाज चेतना के भीतर समाहित व्यक्ति दृष्टि की सशक्त अभिव्यक्ति है''[1] मुक्तिबोध कहानियों की सार्थक पहचान केलिए उनकी कहानियों का प्रवृत्तिगत विशेलेषण अनिवार्य है।

मुक्तिबोध की आरंभिक दौर की कहानियाँ जो प्रेमचंद युग की समाप्ति के समय पर लिखी हुई थी। इस पर प्रेमचंद युगीन कहानियों की स्पष्ट छाप है। प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थ इन कहानियों में प्रतिफलित है। 'खलील काका' कहानी में अपना मतृविहीन पुत्र रसूल से अधिक अनाथ केशव को प्यार करने का आदर्श दिखाया गया है। खलील प्यार करता है केशव को रसूल से ज़्यादा, इसलिए कि उसे माता पिता नहीं है, अनाथ बच्चा है, कोमल है। जी हाँ रसूल को पिता है, वह बडा है पाँच साल का है।[2] आखेट कहानी का मुहब्बत सिंह नामक पुलीस कॉस्टविल ने भीख मांगने घर आये एक भिखारिन को अपना आखेट बनाता है। उसका पाप बोध उसके दिमाग को जागृत रहता है और अपनी पुरानी प्रेमिका के रंग को आखेट युवती में पाकर पाप निवृत्ति के लिए तैयार हो जाता है। उन्होंने उस भिखारिनी को अपनी पत्नी बनाने का आदर्श दिखलाया। इस पर लेखक की प्रतिक्रिया इस प्रकार है, मनुष्य में स्थिति जिस पशु ने उस स्त्री को

---

1 अंधेरे में और मुक्तिबोध की कविता कृष्ण मुरारी मिश्र, पृ. 63

2 मुक्तिबोध रचनावली तीन-सं. मुक्तिबोध पृ 16

चौकी के अंदर पैर रखते हुए अपना आखेट बना लिया था, उसी मनुष्य के भीतर बैठे हुए देवता ने मानो अपने आचरण से अनाथिनी को सनाथिनी बना दिया था।[1]

वह शीर्षक कहानी की शांता के द्वारा समाज में और परिवार में सम्मानित नारी का आदर्श मुक्तिबोध दिखाते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद युगीन आदर्श तथा यथार्थ मुक्तिबोध की प्रारंभिक कहानियों में विद्यमान है।

प्रारंभिक दौर में भी आदर्श और यथार्थ के बीच का संघर्ष मुक्तिबोध में विद्यमान रहा। इसी संघर्ष ने उन्हें एक व्यवस्थित जीवन दर्शन अपनाने में समर्थ बनाया। ''मैं फिलेसफर नहीं हूँ' कहानी के प्रोफसर का कथन देखिए - मैं अपने विद्यार्थियों को मेटाफिसिक्स पढाया करता हूँ। लोग मेरी बहुत तारिफ करते हैं। प्रांत भर में मैं प्रसिद्ध हूँ। लेकिन, जनाब, मैं आपसे कहता हूँ कि पढाते-पढाते ऐसा जी होता है कि कप भर चाय पी लूँ और उनसे साफ-साफ कह दूँ कि मुझे कुछ नहीं आता है। मुझ पर विश्वास मत करो। मेरी विद्वत्ता इन्द्रजाल है। इसके साथ फँसोगे तो जीवन भर धोखा खाओगे, और मुझे नहीं भूलोगे। तब मुझे ऐसा लगता है मानो दिल में खून बह रहा हो।[2]

## पूँजीवादी सत्ता का पर्दाफाश

1940 के बाद वे एक व्यवस्थित जीवन दर्शन अर्थात मार्क्सवाद के निकट आ गये। उस समय से लेकर वे समाज की ओर अधिक उन्मुख हो गय। मामूली आदमी की क्षमता को शोषण से हनन कर समाज को नष्ट करने वाली विनाशकारी पूँजीवादी शक्ति को पहचानने का कार्य उन्होंने किया है। समाज की तरक्की केलिए शोषण रहित, भ्रष्टाचार रहित, समानता पर आधारित एक पूर्ण समाज के निर्माण की आवश्यकता है। 'एक साहित्यिक की डायरी' में मुक्तिबोध ने इस भ्रष्टाचार पर विचार किया है 'जिस भ्रष्टाचार, अवसरवादिता और अनाचार से हमारा समाज व्यथित है, उसका सूत्रपात बुजुर्गों ने किया।[3] मुक्तिबोध की बहुत ही कहानियों में यह पूँजीवादी बुजुर्गों का चित्रण

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध 32
वही पृ 35
वही और वही पृ 154

है।पक्षी और दीमक कहानी का संस्थापति जो रावण का प्रतिच्छवि है मुक्तिबोध उन जैसे सत्ताधारियों की व्यवस्था में व्याप्त व्यापक भ्रष्टाचार को दोषी मानते हैं। जो वहाँ का नेता है और संस्था का सर्वासर्व है और पूँजीपतियों का मूर्तरूप है - ''माली साल की आखिरी तारिख को अब सिर्फ दो या तीन दिन बचे हैं। सरकारी ग्राण्ट अभी मंजूर नही हो पा रही है, कागजात अभी वित्त विभाग में ही अटके पडे हैं। ऑफिसों के बाहर, गलियारे के दूर किसी कोने में पेशाबधर के पास या हॉटलों के कोनों में क्लर्कों की मुट्ठियाँ गरम की जा रही हैं, ताकि ग्राष्ट मंजूर हो और जल्दी मिल जाये।''[1] दूसरे सत्ताधारी को हम 'विपात्र' नामक लंबी कहानी में देख सकते हैं। विपात्र की तमाम घटनाएँ एक विद्याकेंद्र के इर्द गिर्द घटित होती हैं। इस विद्याकेन्द्र के डायरक्टर बॉस सत्ताधारी वर्ग की प्रतिनिधि है जिसकी दया पर इस विद्याकेन्द्र के लोग पाल रहे हैं। बॉस अपने हितानुसार इन लोगों की अभिलाषाओं को एक खास दिशा की ओर मोडता है इससे उनकी विवेक क्षमता कुंठित होती जाती है। वे अहसान प्रेम और संग द्वारा दूसरों की गतिविधियों पर शासन कर अपना प्रभुत्व लोप पूरा करते थे।[2] लेकिन लोग इस के लिए तैयार नहीं है कि उसके ढाँचे में अपनी जिंदगी फिट् करें। इसलिए बाँस के दरबार में उपस्थित होना कर्मचारियों, अध्यापकों केलिए अरुचिकर लगता है। लेकिन फिर भी वे उसमें शामिल होने केलिए बाध्य हैं। क्योंकि ''जो कर्मचारी उनके दरबार में न बैठता वह अपने को असुरक्षित अनुभव करता था।''[3] एक ओर वे दरबार में न अनुपस्थित करने में हिचकिचाते तो दूसरी ओर वे ऐसा ही चाहते थे यदि वह दरबार न हो तो उन्हें घूमने फिरने की स्वतंत्रता रहे लेकिन दरबार की खुली आलोचन उन्हें डर है। दोनों बात एक साथ असंभव थी। इस प्रकार वे अपने नपुंसक क्रोध का आत्मदब्न करते हैं। मध्यवर्गीय कर्मचारियों को अपने पैर तले कुचलनेवाले सत्ताधारी बाँस का दूसरा रूप देखिए। यह बाँस मध्यवर्गीय निष्क्रिय बुद्धिजीवी अमरीका परस्ती रुख से बहुत खुश है। लेकिन वे जनता से डरते हैं। ''क्योंकि अमरिकापरस्ती जनता में न केवल लोकप्रिय नहीं थी, वरन् सामने का पान-वाला और उसके आस-पासवाले गन्दी और बौनी हॉटल में बैठे हुए मैले-

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध पृ. 144
2 वही पृ 216
3 वही पृ. 215

कुचैले लोग भी अमरिका को गाली देते थे अमरिका पर किसी का विश्वास नहीं था।''[1] बॉस के द्वारा मुक्तिबोध ने बुद्धिजीवियों की घिनौती वृत्ति को प्रस्तुत किया है।

## मध्यवर्गीय जीवन के विविध आयाम

व्यवस्था के कुकर्मों के दुष्परिणामों को सबसे ज़्यादा झेलनेवाला वर्ग निम्न मध्यवर्ग है। मुक्तिबोध एक हद तक इस वर्ग को ही इसके लिए दोषी मानते हैं। इनकी समझौतापरस्ती स्वार्थता और निष्क्रियता ही इसके मूल कारण हैं। मुक्तिबोध अपने वर्ग को त्यागना नहीं चाहते बल्कि उसे सुधारकर सर्वहारा से जोडना चाहते हैं। शोषण पर आधारित इस व्यवस्था के अंत केलिए निम्नमध्यवर्ग और सर्वहारा की एकता अनिवार्य है। मार्क्सवादी सिद्धांत पर अदम्य विश्वास रखनेवाले इस ईमानदार लेखक संघर्ष की अनिवार्यता पर ज़ोर देते हैं। कर्मण्यता तथा बौद्धिकता का संयोजन मुक्तिबोध का स्वप्न है। इसलिए कविता की तरह उनकी कहानियों के केन्द्र में भी यह मध्यवर्ग विशेषतः मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है।

मुक्तिबोध की तमाम कहानियाँ व्यवस्था को नज़र में रखते हुए लिखी गयी हैं। भ्रष्टाचार से ग्रस्त व्यवस्था में विभिन्न वर्गों में जिंदगी बितानेवाले लोगों की मनोवृत्तियों का वर्णन है। मुक्तिबोध ने उसे तीन-चार वर्गों में विभक्त किया है। 'विपात्र' नामक कहानी एक विद्याकेन्द्र को केंद्रीकृत है जो अत्यंत प्रतीकात्मक है। यह विद्याकेन्द्र आज की व्यवस्था है। इसका डायरेक्टर बॉस पूँजीपति रावण का प्रतिनिधि है जिसने नयी पीढी को खरीद लिया है। दूसरा वर्ग अवसरवादी मध्यवर्ग का है रायसाहब नामक पात्र इस वर्ग को प्रतिनिधित्व करता है। मुक्तिबोध ने कहानी में रायसाहब का परिचय इस प्रकार दिया है ''राव साहब इस वक्त जिस सीढी पर हैं उसकी अगली सीढी का नक्शा बराबर ध्यान में रखते थे। उस अगली सीढी पर चढने की तरकीबें भी जानते थे और अपनी मुँह हमेशा उसी तरफ़ रखते। वे सिर्फ मौज़ूदा ज़रूरत के लायक पढ लिया करते। सामाजिक वर्तालाप में पिछड़ जाने के भय पर विजय प्राप्त करने केलिए वे दो-चार

---

1 मुक्तिबोध: रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 209

अखबार भी रोज़ देख लिया करते। प्रायः चुप रहते और खूब मेहनत करते। महाकाव्य के धीरोदात्त नायक की भाँति ही धर्म, बुद्धि, कर्तव्यपारायगता और दयाशीलता की सुशिल्पित मूर्ति थे। लेकिन, काम पडने पर, अवसर के अनुसार पवित्र नियमों से इधर-उधर हटाकर भी अपना मतलब साध ही लेते।''[1] राय साहब ऐसा व्यक्ति है जिसका बाहरी रूप उदार है। वे दूसरों की सफलता पर मुँह खुला सलाह देते है और पीठ के पीछे बुराई करते है। विपात्र का रावसाहब मध्यवर्ग का अवसरवाद, पदलिप्सा, और भ्रष्टाचार से युक्त समझौतावादी मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है जो रावण के घर में पानी भरनेवाला है।

'पक्षी और दीमक' का नायक मैं भी रावसाहब की तरह एक मौकपरास्त पात्र है उसका बाहरी रूप संवेदनशील और कृतज्ञ है जो सुख सुविधाओं की प्राप्ति केलिए इस रूप का खूब इस्तेमाल करता है। वे वहाँ का भ्रष्टाचारी नेता का गुलाम भी है उनके शब्दों में साफ है कि उस भग्वे खद्दर कुरतेवाले से मैं दुशमनी मोल नहीं लेना चाहता मैं उसके प्रति बफादार रहूँगा। भले ही वह बुरा हो भ्रष्टाचारी हो, किंतु उसी के कारण मेरी आमदनी के ज़रिए बने हुए है।''[2] ये लोग अपनी ही उन्नति पर तल्लीन होकर दूसरों की सुविधाओं को छीनने में जागरूक आधुनिक मानव का प्रतीक है।

मध्यवर्ग का एक हिस्सा पद मोहित, भेडिए की आखों वाला होता तो दूसरी हिस्सा कर्महीन और यांत्रिक मध्यवर्ग का है जो सिर्फ सत्य के मार्ग पर चलते हैं जीवन मुक्ति केलिए बहुत अधिक ज्ञान प्रप्त करते हैं। भविष्य के प्रति स्वप्नदर्शी भी है ये वर्ग वास्तव में आज की इस व्यवस्था केलिए मिसफिट है। क्योंकि इस व्यवस्था में इनके स्वप्न का साक्षात्कार बिल्कुल संभव नहीं। इस मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है विपात्र का जगत्। वे बडे ज्ञानी थे लेकिन बाहरी दुनिया उनकेलिए अजनबी है ''हार्वाड यूनिवर्सिटियों के इलाकों में घूमता अमरीकी साहित्य में वह सचमुच रम चुका था।''[3] वे एक भावुक स्वप्नशील की भाँति साहित्य से प्राप्त जीवन के अनुसार जीवन स्वप्न बिताता है। ऐसे मध्यवर्गियों पर लेखक की प्रतिक्रिया है - ''सिर्फ सचाई आदमी को कुछ नहीं दे पाती, सचाई को सामने

---

1 गुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध पृ 206
2 वही पृ 148
3 वही पृ 206

लाने केलिए भी ज़ोर और ताकत की जरूरत होती है। ऐसी सच्चाई जो आदमी में ज़ोर पैदा नहीं कर पाता, वह सिर्फ जानकारी बनकर रह जाती है।''[1] जगत की सच्चाई भी ज़ोर और ताकत से वंचित हैं। मुक्तिबोध के मौलिक चिंतन के अनुसार जगत इस तरह की ओक निष्क्रिय ज्ञानी होने को इसकी जीवन परिस्थिति भी कुछ हद तक दोषी है। जगत ईसाई कॉवेन्ट स्कूल की उपज था, उसने ईसाइयत के उत्तमोत्तम नैतिक गुणों को आत्मसात करना चाहा था। गाँधीवादी दर्शन की तरह ईसाई दर्शन को भी मुक्तिबोध अभिलाषाओं के दबाव से उत्पन्न निष्क्रिय दर्शन मानते हैं। जगत का एक और स्वप्न यह है उनके पास कोई राजनीतिक दृष्टिकोण नहीं था। ''जगत बेवकुफ इसलिए भी था कि अमरीकी जनता की महान उपलब्धियों का अमरीकी सरकार और उसकी विशेष नीति से मिलाकर देखता था। परिणामतः जब डलेस कोई गलती करता या आइज़नहॉवर कुछ गड़बड़ कर जाता तो उसे अपार दुख होता।''[2] जगत जैसे मध्यवर्गियों की राजनीतिक दृष्टि पर पूँजीवादी लोग प्रसन्न है।

अपनी निष्क्रियता के कारण इस व्यवस्था में सबसे अधिक संघर्ष झेलनेवाला वर्ग मध्यवर्ग है। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को कई प्रकार के संघर्ष हैं। कहीं अपनी श्रेणी से निम्न स्तर तक उतरने का संघर्ष है तो कहीं आत्मग्रस्तता से आत्माविष्कार की ओर जाने का संघर्ष है और वर्षों के प्रयत्न से प्राप्त ज्ञान को व्यवहार में लाने का संघर्ष है। तंत्र और भ्रष्टाचार पर आधारित आज की इस व्यवस्था में ज्ञान केलिए पर्याप्त मूल्य नहीं है इसलिए अर्जित ज्ञान को व्यवहार में लाने केलिए अवंसर नहीं है। 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' नामक कहानी का ब्रह्मराक्षस एक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है। उसने अपने जीवन काल में विराट् ज्ञान प्राप्त किया। लेकिन अवसर की अपर्याप्तता के कारण अपना ज्ञान देने केलिए योग्य शिष्य न मिल पाया। अपना अर्जित ज्ञान दूसरों को देने की या प्राप्त ज्ञान को प्रयोग में लाने की अभिलाषा के कारण मृत्यु के उपरांत भी पृथ्वी पर अटक गई उनकी आत्मा अकर्मण्य होकर एक महाभवन की ऊपरी मंजिल पर गहरी नींद में है। यह आकस्मिक है कि मूर्खता के कारण घर से निकाले गये बच्चे के मन में विराट ज्ञान पाने

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध.
वही पृ 209

की शौक उत्पन्न होती है। वह योग्य गुरु की तलाश में इस भवन में पहुँचता है और ब्रह्मराक्षस ने उसको योग्य शिष्य के रूप में स्वीकार किया। गुरु अपना समस्त ज्ञान शिष्य को दे पाता - गुरु ने मृदुता से कहा - बोलो बेटे -

''रामः रामौ, रामाः - प्रथमा

रामम, रामौ, रामान् - द्वितीय।''[1]

शिक्षा पूर्ण होने के उपरांत भोजन वेला में शिष्य गुरु के कोमल वृद्ध मुख को देखकर काँपकर स्तम्भित रह गया। तब गुरु अपना इतिहास खुलता है - ''शिष्य! स्पष्ट कह दूँ कि मैं ब्रह्मराक्षस हूँ किंतु फिर भी तुम्हारा गुरु हूँ। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए। अपने मानव-जीवन में मैं ने विश्व की समस्त विद्या को मथ डाला, किंतु दुर्भाग्य से कोई शिष्य न मिल पाया कि जिसे मैं समस्त ज्ञान दे पाता। इसलिए मेरी आत्म इस संसार में अटकी रह गयी र मैं ब्रह्मराक्षस का रूप में यहाँ विराजमान रहा।''[2] आगे गुरु अपना कर्तव्य शिष्य का सौंप किया ''मैं प्रवृत्तिवादी हूँ, साधु नहीं। सैकडों मील जंगल की बाधाएँ पारकर तुम काशी आये। तुम्हारे चेहरे पर जिज्ञासा का आलोक था। मैं ने अज्ञान से तम्हारी मुक्ति की। तुमने मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरी आत्मा को मुक्ति दिला दी। ज्ञान का लाया उत्तरदायित्व मैं ने पूरा किया अब मेरा यह उत्तरदायित्व तुम पर आ गया। जब तक मेरा दिया तुम किसी और को न दोगे तब तक तुम्हारी मुक्ति नहीं।''[3] 'ब्रह्मराक्षस' कविता का ब्रह्मराक्षस को भी मुक्तिप्राप्ति नहीं मिलती है। लेकिन 'ब्रहमराक्षस का शिष्य' कहानी में ब्रह्मराक्षस का आनंदपूर्वक अंत है उनको मुक्तिप्राप्ति मिलती है।

मुक्तिबोध अपनी कहानियों में मध्यवर्ग के स्वभाव वैविध्य को भिन्न भीन्न पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। निम्नमध्यवर्गियों के स्वभाव को मज़बूत ढंग से अभिव्यक्त करने वाली कहानी है भूत का उपचार। स्वाभिमान मध्यवर्गियों की विरासत है। यह स्वभाव उनका सबसे बडा अभिशाप भी है। मध्यवर्ग अपने अंतरंग में विराट संघर्ष को झेलते हैं। लेकिन उनके भीतरी दुःख और अभाव बाहर प्रकट करना नहीं चाहता। उनका लक्ष्य उच्च स्तर पर पहुँचना है। लेकिन वे इसमें असमर्थ है। इसलिए वे अपना

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 118
2 वही पृ 119
3 वही पृ 119-120

बाहरी प्रकट रूप पूर्णतया महिमा पंडित करते हैं भीतर जितना गंभीर संघर्ष है उसको स्वयं महसूस करते हैं। अपने अभावों को दूसरों द्वारा पहचान पाना या दूसरों की सहानुभूति बन जाना उनकेलिए असहनीय है। 'भूत का उपचार' कहानी में निम्न मध्यवर्गीय समाज की असलियत प्रस्तुत है - ''मैं इस बात का विरोध करता हूँ कि आप निम्नमध्यवर्गीय कहकर मुझे जलील करें, मेरे फटेहाल कपडों की तरफ जान बूझकर लोगों का ध्यान इस उद्देश्य से खिंचवाये कि वे मुझ पर दया करें।''[1] इस प्रकार वह अपने वर्ग का सदस्य कहना भी दुरभिमान की बात समझता है। दूसरों की सहानुभूति पाना भी वह इनकार करते हैं।

'समझौता' शीर्षक कहानी में इसी सन्दर्भ को सराक्त ढंग से मुक्तिबोध अभिव्यक्त करते हैं। इस कहानी का युवक नौकरी की तलाश में सरकस कंपनी के मैनेजर के पास जाता है सरकस द्वार के अंतर जाने केलिए जब वह गिडगिडाता है तब दो मज़बूत आदमियों ने उसकी दोनों बाहों को पकड लिया और उसे बाहर फेंक दिया गया। बडा कष्ट भोगने के बाद अंत में मैनेजर से उसकी मुलाकात होती है। मैनेजर ने उसे एक शर्त के आधार पर नौकरी देने को तैयार हो जाता है और एक रुपया फेंककर भोजन करके कल सुबह आने का आदेश देता है। उस व्यक्ति ने दुबारा उस मैनेजर का चेहरा भी नहीं देखा। वह अपने नौकरी मिलने के पहले की विवशता में निर्लज्ज होकर समझौते केलिए तैयार हो जाता है - ''हर शर्त मानने केलिए तैयार हूँ मैं, झाडू दूँगा, पानी भरूँगा जो कहेंगे सो करूँगा।''[2] दूसरे दिन तडके जब वह व्यक्ति सर्कस में दाखिल हुआ तो दो अजनबी आदमियों ने उसकी बाँहें पकड लीं और उसे एक बंद कोठे में ले गये। तब से शुरु हुआ उसका कष्टदायक जिन्दगी। भयानक हण्टरों से उन्हें रीछ बनने का ट्रेनिंग दी गयी ''वे न मालूम कैसी कैसी भयंकर कसरतें करवाने लगे, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे कसरतें नहीं थी शारीरिक अत्याचार था। ज़रा गलती होने पर वे हण्टर मारते। इस दौरान में उस व्यक्ति की काफी पिटाई हुई। उसके हाथ, पैर ठोडी में घाव लग गये। वह कराहने लगा। कराह सुनते ही चाबुक का गुस्सा तेज़ होता। मतलब

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 129
वही पृ. 136

यह कि वह अधमरा हो गया उसको ऐसी हाल में छोडकर हण्टर-धारी राक्षस चले गये।''[1] वहाँ से कुछ दिनों बाद उसे रीछों के पिंछरे में ले गया वहाँ उसे रीछ से भयानक यातनाएँ सहनी पडीं। इसके बाद पाँच आदमियों ने उसे पकड लिया और शरीर पर जबरदस्ती रीछ का चमडा मढ़ दिय गया। यहाँ से उस व्यक्ति का मानवावतार समाप्त होकर ऋक्षावतार शुरू होता है उसे कच्चा मांस, भूना मांस और शराब पिलायी जाती है। वह रीछ बन गया अंत में उसे शेरों के पिंछरे में भेज दिया जाता है। लेकिन शेर के पिंजरे में प्रवेश करने पर उसे समझाया जाता है कि उस पिंजरे का शेर उसका सीनियर अफसर है - ''अबे डरता क्यों है, मैं भी तेरे ही सरीखा हूँ मुझे भी पशु बनाया गया है, सिर्फ मैं शेर की खाल पहने हूँ तू रीछ की!.... मैं तुझे खा डालने की कोशिश करूँगा, खाऊँगा नहीं। कवायत नहीं की तो हण्टर पडेंगे तुमको और मुझको भी! मैं तुझे खा नहीं सकता, आओ दोस्त बन जायें। अगर पशु की जिन्दगी ही बितानी है तो ठाठ से विताएँ, आपस में समझौता करके।''[2] इस तरह मध्यवर्गीय समाज अपनी अभावग्रस्तता के कारण सत्ता से समझौते केलिए तैयार हो जाता है।

मध्यवर्गीय जीवन के ह्रासशील स्वभाव को 'विद्रूप' शीर्षक कहानी का नायक सर्वटे के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। उसका स्वभाव ऐसा है कि वह न तो अपने वर्ग से जुड सकता है और न नीचे की श्रेणी में जा सकता है। उसका फिलॉसफी यह है कि दूसरों के घर जाना या दोस्ती स्थापित करना उसकेलिए अपमान है। उसकी पत्नी प्रमीला का कहना है - ''आखिर मैं ने जिद ही पकड ली। तो उन्होंने कहा कि अब आधुनिक काल में सुदामा की औरत श्रीकृष्ण के यहाँ जाएगी, सुदामा नहीं। यह मैं तुम्हें शाप देता हूँ। उन्होंने बहुत से शाप दिये हैं..... बहुत से।''[3]

मध्यवर्गीय मानसिकता का यथार्थ 'जंक्शन' कहानी में भी दर्ज है। इस कहानी का पात्र निम्न मध्यवर्गीय है, वह दूसरों का ओवरकोट पहनकर बडे शान से ठंडी रात में प्लेटफार्म पर घूमता है। एक साफ सुथरे लडके को अपनी कोट में स्थान देता है, लेकिन

---

१ मुक्तिबोध रचनावली मुक्तिबोध, पृ 137
पृ 139
नहीं पृ. 179

एक गंदे लडके के आने पर वह कोट् ख़राब हो जाने की संभावना से उसकी तरफ ध्यान नहीं देता है।

मध्यवर्गियों में कुछ लोग क्षणिक सुख के पीछे भागनेवाले होते हैं जो अंत में अपना सारा वैभव खो देते हैं और वे अमानवीय शोषण का शिकार बन जाते हैं। 'पक्षी और दीमक' कहानी के पक्षी की कथा के द्वारा मुक्तिबोध ऐसे मध्यवर्गियों का चित्रण अंकित करते हैं। दीमक खाने की इच्छा से पक्षी अपना एक-एक पंख बेचकर एक गाडिवान से दिमकें खरीदता है। पक्षी का दीमकें खाने का इतना बडा शौक देखकर पक्षी के पिता ने उपदेश दिया कि ''बेटे, दीमकें हमारा स्वाभाविक आहार नहीं है और उनकेलिए अपने पंख तो हरगिज़ नहीं दिये जा सकते।''[1] लेकिन इस नौजवान पक्षी ने अपने पिता की सलाह का इनकार कर दिया और पंख बेचने और दीमकें खाना जारी रखा। पंख बिकते बिकते उसको उडने की क्षमता नष्ट हो गयी। अंत में वह पंखहीन होकर ज़मीन में उतरा और जंमीन से दीमकों को ढूँढ़कर इकटा करने लगा। फिर गाडिवान को दीमकें देकर पंख वापस खरीदने का उसने निश्चय किया। लेकिन गाडिवान ने हँसकर कहा ''बेवकुफ, मैं दीमक के बदले पंख लेता हूँ लेकिन पंख के बदले दीमक नहीं।''[2] एक दिन काली बिल्ली आई और अपने मुँह में उसे दबाकर चली गयी।

मध्यवर्गीय बाबू वर्ग की कमज़ोरियों का अंकन 'दाखिल दफ्तर साँझ' में मुक्तिबोध ने किया है। यह सिर्फ उस वर्ग का स्वभाव नहीं है बल्कि एक सामाजिक संकट है। मुक्तिबोध की दृष्टि अक्सर ऐसे सामाजिक संकटों की तरफ रहती है। दफ्तरों के वातावरण में अनावश्यक तनाव का वातावरण रहता है। इस कहानी का बॉस असिस्टेंट मिस्टर वर्मा को दफ्तर शास्त्र का नियम बताता है। ''नौकरी में वर्मा साहब कोई किसी का न दोस्त है, न दुश्मन। जब किसी पर आ बनती है तो कौन अपनी सुरक्षा की कीमत पर दूसरों की मदद करता है।''[3] किसी के पास एक व्यवस्थित जीवन दर्शन नहीं। विचारधारा से प्रभावित है तो भी सरकारी नौकरों को उसके अनुसार काम करना मना है। इस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था में दफ्तरदार वर्ग सिर्फ गुलामी जीवन बिताता है। इस

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध पृ 149
2 वही 149 150
3 वही पृ 55

कहानी के बॉस में प्रगतिवादी झुकाव है फिर भी वह संघर्ष से बचना चाहता है। उसके शब्दों में - ''प्रगतिवादी शब्द से मैं डरता नहीं, किंतु दुर्भाग्य से मैं अब सरकारी नौकर हूँ। सरकारी नौकर की विचारधारा नहीं होती, होती भी है तो उसके अनुसार कार्य करना मना है। पेट की गुलामी कर रहा हूँ आत्मा को बेचकर। मात्र वेश्यवृत्ति पर हम लोग जीवित हैं किसी वेश्या को सुहागन कहने से उसका अपमान होता है वैसा अपमान तुम कर रहे हो मेरा।''[1] इस व्यवस्था में कर्मचारियों की जिन्दगी संतृप्त नहीं रहती। यह व्यवस्था उनकी आज़ादी का हनन करती है और उनकी विवेकशीलता को नष्ट कर देती है। उनकी एक खास विशेषता यह है कि वे दूसरों की गलती को निकालने में विशारद है, पर अपनी गलती को छिपाना चाहता है और उस बेचैनी में अपना संतुलन खो बैठता है। सूपरिन्टेंडेन्ट रामेश्वर इस शासकीय तानाशाही का सच्चा प्रतिनिधि है।

'अंधेरे में' कहानी में नवयुवक की छाया अंधेरे में यात्रा करती हुई दिखाई पडती है। समाज की स्थितियों को देखते-देखते आतमालोचन और आत्मविशेलेषण से गुज़र कर वह महसूस करता है समाज में फैला यह अंधकार मध्यवर्गीय अकर्मण्यता तथा पालायनवादिता का है। वह सोचता है - ''पाप हमारा पाप हम ढीले-ढाले, सुस्त मध्यवर्गीय आत्म संतोषियों का घोर पाप! बंगाल की भूख हमारे चरित्र विनाश का सबसे बडा सबूत।''[2] अंधेरा सामाजिक व्यवस्था में लिप्त भ्रष्टाचार का प्रतीक है जो समाज की समस्याओं के भीतर छिपा है। मध्यवर्ग आत्मसंतोष केलिए अंधेरे से समझौता करता है जो समज का सबसे बडा अभिशाप है। इस कहानी का नवयुवक प्रगतिशील है। इसलिए वह समझौते से इनकार कर आत्मालोचन करता है।

'प्रश्न' कहानी में नैतिकता और अनैतिकता के बीच का संघर्ष हम देख सकते हैं। सुशीला नामक सोलह बरस की लडकी का ब्याह होता है चालीस वर्ष के पुरुष के साथ। और मृत्यु के बाद एक सलोने युवक के साथ उसका अवैध संबंध उसके पुत्र नरेंद्र केलिए अभिशाप बन जाता है और उसका यह प्रश्न कि माँ तुम पवित्र हो? तुम पवित्र हो, न? उस युवति के जीवन पर ही प्रश्न चिह्न सा लगा जाता है। हमारा समाज ही ऐसा है

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध पृ 61

2 वही पृ. 86

कि एक लडकी की वृद्ध के साथ शादी में कोई अपराध नहीं देखता बल्कि एक बेसहारा विधवा के युवक के साथ संबंध में अपराध देखता है। उसे अपवित्र मानता है।

जनसाधारण के विवशताग्रस्त जीवन का वर्णन 'काठ का सपना' शीर्षक कहानी में हुआ है। पूँजीवादी व्यवस्था से सूख कर काठ बने गये दंपति अपनी कन्या सरोज केलिए सपना देखते हैं। बादल तूफान पर बहे जा रहे काठ पर बालिका सरोज बैठी है। सरोज ने अपन् नन्हे दो हाथ दोनों काठों पर टेक दिये हैं। जिनके सहारे वह स्वयं बही चली जा रही है।''[1] मुक्तिबोध इन काठों के सपने के प्रति अपनी प्रतिश्रुति व्यक्त करते हैं। ''सरोज की इस बाल मूर्ति की रक्षा करनी होगी। इन दो निष्प्राण काठ लट्टों का यही कर्तव्य है।''[2] निम्न मध्यवर्गीय समाज का स्वभाव ऐसा है कि वे अपने कष्टता और दुःख के बोझ को वहन करने को तैयार है; पर अपनी संतानों का इस दुःख से बचाना चाहता है। यह एक साधारण मध्यवर्गीय स्वप्न है।

## राजनीतिक संकट की कहानियाँ

मुक्तिबोध का जीवन काल कई दुर्घटनाओं तथा युग परिवर्तन काल था। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित विश्वयुद्ध ने जनजीवन की जिंदगी को कष्टदायक बनाया तो भारत में बंगाल की अकाल जैसे दुर्घटनाएँ घटीं। 1947 की आजादी -प्राप्ति भी घोर निराशाजनक सिद्ध हुई। आज़ादी प्राप्ति के बाद शोषण रहित समाज का स्वप्न भी भंग हो गया। साम्राज्यवाद की क्षति हुई। लेकिन पूँजीवादी शक्ति मज़बूत बन गयी। शोषण के जंजीर से मुक्त होने का, जनसाधारण का साहस तथा प्रयास विफल हे गये। उन्हें समाज के पूँजीपतियों से घोर अत्याचार झेलना पडा। विदेशी शासन व्यवस्था के स्थान पर प्रतिष्ठित पूँजीवादी शासन व्यवस्था तंत्र ने भारतीय संस्कृति के कई परंपरागत मूल्यों को भी नष्ट कर दिया।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन। मुक्तिबोध. पृ 173

2 वही पृ 173

मुक्तिबोध का राजनीतिक चिंतन अंतर्राष्ट्रीय स्तर भी फैला हुआ है। विजय मोहन सिंह के शब्दों में - ''मुक्तिबोध की बाद की कहानियों में एक बेचैन करने वाली अंतर्राष्ट्रीयता आ रही थी, जिससे पता चलता है कि मुक्तिबोध को एक बडे स्तर पर अहसास हो रहा था कि हम एक देश में नहीं एक विश्व में रह रहे हैं, जिसके प्रत्येक दबाव तथा परिवर्तन से नितांत निजी स्तर पर भी बच पाना संभव नहीं है।''[1] 'क्लॉड ईथरली' कहानी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर मुक्तिबोध की लगन का दस्तावेज़ है। इस कहानी का प्रतीकात्मक पात्र क्लॉड ईथरली एक विमानचालक है जिसने हिरोशिमा पर बम गिराया था। अमरीकी सरकार हर माह उन्हें चैक भेजती है। जिससे कि उन पैसों से दीन हीनों की सहायता हो जिससे इसका पाप भार कम हो जाए। वह अपनी कारगुज़ारी देखने हिरोशिमा गया। वहाँ का भयानक दृश्य देखकर इसका दिल दुखी हो जाता है। वह अपने पाप भार से पागल होता है और पागलखाने में जाता है। लेकिन अमरीकी सरकार ने उसे वार-हीरो घोषित किया है, ''लेकिन इसकी आत्मा कहती थी उसने पाप किया, जघन्य पाप किया है।''[2] वह उस अपराध क दण्ड पाने को तैयार है। किसी भी प्रकार का दण्ड पाने का उसने प्रयास किया। लेकिन वह असफल हो जाता है। ''एक बार उसने डैल्लास नाम की एक जगह के कैशियर पर सशस्त्र आक्रमण किया। परिणाम कुछ नहीं निकला, क्योंकि बडे सैनिक अधिकारियों को यह महसूस हुआ कि ऐसे प्रख्यात युद्ध वीर को मामूली उचक्का और चोट कहकर उसकी बदनामी न हो।''[3] इस तरह क्लॉड ईथारली की ईमानदारी पर किसी को भी अविश्वास नहीं। अमरीकी सरकार उसकी करनी को पाप नहीं महान कार्य मानती थी। लेखक के अनुसार क्लॉड इथर्ली अणुयुद्ध के विरोध करनेवाली आत्मा की आवाज़ का दूसरा नाम है। ''हाँ! ईथरली मानसिक रोगी नहीं है। आध्यात्मिक अशान्ति का आध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलंत प्रतीक है।''[4]

---

1 आज की हिन्दी कहानी विजय मोहन सिंह 30
मुक्तिबोध तीन मुक्तिबोध पृ 159
3 वही 159
वही 160

## आर्थिक विघटन

पूँजीवादी शोषण व्यवस्था का अभिशाप सबसे अधिक भारत की आर्थिक व्यवस्था पर पडा है। मुक्तिबोध की लगभग सभी कहानियों में आर्थिक विघटन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण हम देख सकते हैं। इस व्यवस्था में जो व्यक्ति समझौते केलिए तैयार है वह आर्थिक पीडा से मुक्त हो सकता है और जो लोग समझौते केलिए तैयार नहीं उसकी ज़िन्दगी आर्थिक अभाव से ग्रस्त होती है। 'उपसंहार' कहानी का रामलाल एक गरीब क्लर्क है वह और उसका परिवार गरीबी से पीडित है। उसकी पत्नी सावित्री झूठी दिलासाएँ देकर बच्चे को मोहित करती है। ''तुम्हारे बाबूजी बहुत बडे अफसर होंगे, अब जण्डेल होंगे, अपनी कंपनी खेलेंगे अपना अखबार निकालेंगे।''[1] बच्चे यह सुनकर खुशी में नाचने लगते हैं। लेकिन यह सुनकर रामलाल का हृदय असहाय बोध से जलता है। रामलाल अपने परिवार को संघर्ष, गरीबी और कष्ट से बचाने में असमर्थ है। अपने प्रकाशहीन, हवाहीन घर में पति-पत्नी के अलावा दो बच्चे थे। उनके पाल-पोषण में असहाय रामलाल पापबोध से ग्रस्त जीवन बिताता है। आर्थिक अभाव से पीडित ग्रामीण शिक्षक की आत्महत्या का समाचार पढकर वह अपने को भी उस शिक्षक के प्रतिरूप के रूप में देखता है। रामलाल के बारे में कहानी का दूसरा पात्र माधवप्रसाद का कथन है ''जो आदमी गरीब बना रहना चाहता है, उसका कोई इलाज है? कितनी तो नौकरियाँ छोडी उसने मात्र भावुकतावश मैंने उसकी कई बार मदद की, पर उसने कभी अपनी हालत नहीं सुधारी। दिमागी फ़ितूर उस पर आज भी सवार है।..... भाई अगर रोटी कमाना हो तो उसका तरीका सीखो। दुनिया का फिक्र छोडकर अपनी बढ़ती की चिंता करो। मैं ने उसे इतने अच्छे-अच्छे काम दिलाये पर उसने एक भी मन लगाकर नहीं किया।''[2]

---

1 वही 91
मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 101

## पारिवारिक कहानियों का नया रूप

नयी कहानी के लगभग सभी कहानीकारों ने पारिवारिक कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में आर्थिक अभाव एक केंद्रीय समस्या है। आर्थिक अभाव से उत्पन्न पारिवारिक टूटन नई कहानी में सर्वत्र विद्यमान है। मुक्तिबोध ने भी आर्थिक अभाव की समस्याओं को लेकर कहानियाँ लिखी है। लेकिन फर्क इतना है कि मुक्तिबोध की कहानियों में आर्थिक अभाव, परिवार टूटता नहीं है। पति-पत्नी तथा परिवार के अन्य सदस्यों का संबंध ज़्यादा सुदृढ हो जाता है। यही मुक्तिबोध की कहानियों की खासियत है। 'जलना' कहानी आर्थिक अभाव से पीडित संयुक्त परिवार की कहानी है। इसमें पति-पत्नी और पाँच बच्चों के साथ माँ-बाप भी हैं। संवेदनशील पति-पत्नि-माँ-बाप की सेवा शुश्रूषा में बडे लगन से लगे रहते हैं। परिवार के तमाम सदस्य आपसी प्यार से संतुष्ट है। आर्थिक अभावग्रस्त पति के तनाव को पत्नी भी महसूस करती है। वह सोचती है कि काश! मैं पढी-लिखी होती तो पति को इस कदर जूझना नहीं पडता। घर का मुखिया चुन्नीलाल शर्मा बच्चों के भविष्य के बारे में यथार्थवादी सपने देखता है। वह सोचता है ''उसके बच्चे बडे होंगे। कॉलेज एजुकेशन तो क्या ले सकेगे। इतना पैसा ही नहीं है कि उनके लिए किताबें खरीदें। लेकिन हाँ मैं अपने सारे विचार मेरी अपनी सारी कल्पनाएँ और धारणाएँ उन्हें बता दूँगा। उनका बिल्कुल सिस्टमैटिकली अध्ययन कर दूँगा। मैं उन्हें बडे आदमियों की बैठकों से दूर रखूँगा उनकी जगत-चेतना को विस्तृत और यथार्थवादी बना दे और उनमें मरें और जिये। मैं उन्हें क्रांतिकारी बनाऊँगा मैं उन्हें समाज की तलछट बनने केलिए प्रेरित करूँगा।''[1]

कविता की तरह कहानियों में भी मनुष्य ही केंद्र में है। श्रीकांत वर्मा के शब्दों में ''अभिशप्त मनुष्य की वेदना का स्रोत और संगत पूर्ण निष्कर्षा की विवशता के कारण ही मुक्तिबोध के सारे साहित्य में एक ही विशाल अनुभव की सैकडों सूरते है।''[2]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 167
कठ का सपना मुक्तिबोध पृ 7

## मुक्तिबोध की कथा संवेदना

मुक्तिबोध शायद हिन्दी साहित्य का पहला कथाकर है जिन्होंने समाज की बुनियाद पर व्यक्ति को प्रतिष्ठित किया। व्यक्ति के दर्द को समाज के परिप्रेक्ष्य में देखने की क्षमता उनकी कहानियों में है। उनके संवेदनात्मक ज्ञान तथा ज्ञानात्मक संवेदना का अद्‌भुत दर्शन इसकी पृष्टभूमि में है। मुक्तिबोध के लिए कहानी सिर्फ मनोरंजन का साधन नही था। शायद उनमें मनोरंजन नाममात्र भी न था। उन्होंने समाज की जड को उखाडनेवाली समस्याओं से अपनी कहानियों की काया में प्राणों का संचार किया। उनकी कहानियों का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसमें मानव जीवन के सभी पक्षों के दर्शन हम कर सकते हैं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक शोषण के शिकार, मानवीय महत्त्व और आत्मसम्मान से वंचित निम्न मध्यवर्गीय मनुष्य उनकी कहानियों के केंद्र में है। पारिवारिक संबन्धों के सीमित फलक को उन्होंने सामाजिक परिदृश्य देकर विस्तृत किया है। यह भी उनकी कहानियों में है की व्यवस्था का दबाव संस्कृति तथा सभ्यता को किस प्रकार गुलाम बना देता है। मुक्तिबोध का पूर्ण विश्वास था कि एक दिन यह व्यवस्था बदलकर समता पर आधारित साम्यवादी व्यवस्था का प्रचलन हो जाएगा। इस महान लक्ष्य की प्राप्ति केलिए उन्होंने जनता का मानसिक परिष्कार, व्यक्तित्वांतरण तथा दृढता को महत्वपूर्ण माना। इसकेलिए जनता को तैयार कराना साहित्यकार का लक्ष्य माना। लेकिन इस लक्ष्य से विमुख होकर केवल आत्मग्रस्तता की जंजीर में व्यक्ति को फँसानेवाला व्यक्तिवादी साहित्य तथा व्यक्ति की अस्मिता का सर्वनाश कर उसे दिशाहीन कर देनेवाला अस्तित्ववादी साहित्य को जडों से उखाडना अपना कर्तव्य माना। सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण पूर्ण समाज की संकल्पना उनमें ज़रूर थी। उनकी कहानियों में जीवन के प्रति प्रतिबद्धता अधिक गहराई से दिखाई देती है। उन्होंने स्वयं लिखा है - ''आत्म ग्रस्तता के बावजूद शायद उनको साथ लिये मेरा आत्मसंवेदन समाज के व्यापकतर छोर तक छूने लगा।''[1]

1 तारसप्तक स [illegible] मुक्तिबोध वक्तव्य

मुक्तिबोध की कहानियों के पात्र हमारे समाज के विभिन्न स्तरों से जुडे मनुष्य हैं। उनकी कहानियों का फलक़ इतना विस्तृत है कि समाज का यथार्थ उनमें साक्षात्कृत होता है।

व्यवस्था बदलाव में मुक्तिबोध ऐसे लोगों की ज़रूरत पर ज़ोर देते है जो व्यवस्था के खिलाफ खडे रहे और उसके भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश भी करते हैं। जनसाधारण केलिए जिन्दगी की असलियत को दर्शाने में वे सफल रहे। विपात्र कहानी का कथावाचक मैं ऐसा एक पात्र है जो व्यवस्था के खिलाफ एक सशक्त हथियार है। कथावाचक मैं भनावत से कई सवाल पूछते हैं कि तुम बॉस के सामने हो जाते हो तब तो अपने को तुच्छ समझते हुए उसे महान मानकर काम करते हो। भनावत ने निर्लज्ज होकर जवाब दिया बिना शक मुझे वैसा करना ही चाहिए..... मैं अवाक् हो उठा, भई, कैसे, क्यों, किस तरह? वह एक क्षण-भर चुप रहा। फिर उसने कहा, ''कहा जाता है कि हम में व्यक्ति स्वातंत्र्य है! लेकिन यह मान्यता झूठ है। हमें खरीदने और बेचने की खरीदे जाने और बेचे जाने की आज़ादी है। हमने अपना व्यक्ति स्वातंत्र्य बेच दिया है एक हद तक तो इसलिए.....''[1] मुक्तिबोध का संवेदनशील मन इस भ्रष्ट व्यवस्था में इस प्रकार के मज़बूत मनुष्यों का जन्म होना आवश्यक मानते हैं। इस व्यवस्था के बदलाव केलिए यह आवश्यक भी है। ''कविता की भाँति कहानी में भी मुक्तिबोध की अपनी एक अलग संवेदना और शैली है। उनमें चरित्रों के बाहरी आचरण और भीतरी प्रतिक्रियाओं का व्यौरा बहुत है और कविता की भाँति बाहरी से भीतरी और भीतरी से बाहरी दुनिया की ओर अतिक्रमण की कोशिश दिखाई पडती है।''[2] उनकी कहानियों में कहीं पूँजीपतियों का अत्याचार है तो कहीं मध्यवर्गियों का संघर्षमय जीवन, कहीं आर्थिक अभावग्रस्त परिवार है तो कहीं पीडादायक ज़िन्दगी बितानेवाली नारी और फटेहाल बच्चे का चित्रण। मुक्तिबोध का दृढ विश्वास है कि इस उत्पीडन ग्रस्त व्यवस्था के समापन केलिए मध्यवर्गीय व्यक्तियों का मानसिक परिवर्तन सबसे ज़रूरी चीज़ है। हम जिस व्यवस्था के सदस्य हैं उसका असली रूप प्रत्यक्ष नहीं है। मुक्तिबोध ने अपनी कहानियों

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध पृ 220 21

2 मुक्तिबोध रचनावली एक सं मुक्तिबोध- पृ. 21

के माध्यम से व्यवस्था के भीतर छिपी असलियत को पहचानने का मानसिक विवेक विकसित कर उस पहचान केलिए व्यक्ति को सक्षम बनाने पर ज़ोर दिया है।

## मुक्तिबोध की कहानियों का रचनाविधान

मुक्तिबोध ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से एक स्वायत्त साहित्यिक दुनिया का सृजन किया है जिसमें कोई पूर्वनिश्चित प्रतिमानों के बल पर प्रवेश नहीं कर सकता। यही उनकी साहित्यिक विशिष्टता का निर्णायक तत्व है। कविता की तरह कहानी को भी काट-छाँट करने की क्रिया में संलग्न यह लेखक कथ्य को शिल्प की मास्मरता में फँसकर पूर्ण रूप देने में सक्षम बने थे। इसलिए मुक्तिबोध की कहानियों का विश्लेषण करते समय शिल्प-दृष्टि भी विचारणीय होती है।

प्रारंभिक दौर की कहानियाँ कहानी के स्वीकृत मानदंडों के अनुरूप होने के कारण शैल्पिक नवीनता की दृष्टि से उतना उल्लेखनीय नहीं हैं। विवरणात्मकता के साथ सपाट चरित्र-चित्रण की रीति प्रारंभिक कहानियों को एक मामूली आकार ही प्रदान करती हैं। रोमांटिक संस्पर्श और आदर्शत्मकता के कारण 'खलील काका' 'वह' 'आखेट' 'मोह और मरण' 'मैत्री की माँग' 'प्रश्न' 'उपसंहार' आदि कहानियाँ बाद की कहानियों की मुक्तिबोधीय जटिलता से मुक्त हैं। इन रचनाओं का पूरा ज़ोर पात्रों की भावुकता पर दिया गया है। 'आखेट' कहानी के मुहब्बतसिंह के मानसिक परिवर्तन का यह चित्र देखिए ''एकाएक मुहब्बतसिंह को अपनी माँ की याद आयी जो कहा करती थी 'पाप से बचाकर' उसकी धुँधली आँखों में मुहब्बतसिंह को आज मानो कोई नया सत्य दिखा हो। वे आँखें आज अधिक स्पष्ट होकर उसके सामने आयी और उसको मालूम हुआ मानो उसकी आँखें गीली हो रही हों। उसके बाद उसे पिता भी याद आये, उनकी प्यार-भरी बातें उसे याद आने लगीं और उसका दिल भारी हो गया।''[1] पात्रों की यह भावुकता और सहानुभूति इस दौर की कहानियों में एक अनिवार्यता सी प्रतीत होती है। यह सहानुभूति लेखकीय विकास में व्यंग्य और आक्रोश के रूप में परिणत हो जाती है। सपाटता और

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध पृ 29

विवरणात्मकता के कारण इनमें तीष्णता का अभाव है। किसी एक आदर्शात्मक निष्कर्ष तक पहुँचकर उपदेशात्मक रूप में ऐसी कहानियाँ समाप्त होती है।

मुक्तिबोधीय संकीर्णता से युक्त कहानियों में शिल्प अत्यन्त गहन है। इस दौर की कहानियों में विभिन्न शैलियों का मिश्रण हुआ है। इनमें सहज और साधारण सपाट शिल्प का भी उपयोग हुआ है। 'सतह से उठता आदमी' कहानी में रामनारायण के अजीब स्वभाव की अभिव्यक्ति केलिए उनका रूप वर्णनात्मक शैली में दे दिया है। ''सचमुच वह भयानक लगता था। चेहरे पर कम से कम दो महीने की घनी लंबी दाढी बढी हुई थी। किसी वैरागी की दाडी की भाँति ही वह थी। एक आँख इतनी लाल थी, मानो उसमें खून आकर जम गया हो। लेकिन आँखों बडी थीं। चेहरा बडा था, और माथा भी। लेकिन सिर पर बाल कम थे जो थे बिखरे हुए थे और काले थे। और सिर के बीचों बीच साँवली चाँद थी। और उस चाँद के बीचों बीच खजूर की भाँति लम्बा गोल, एक बड भसा था। जो किसी छोटे से स्तूप की भाँति दिखाई देता था। सारे चेहरे पर एक भयानक अनगढपन, एक विचित्र विद्रूपता थी।''[1] 'अंधेरे में' के युवक की गहरी नींद का चित्रण करते समय उनका देर तक सोने का स्वभाव दिखाने केलिए प्रसादजी की काव्यांश उद्धृत करता है - ''बीती बिभाबरी जाग री, अम्बर पनघट में डुबो रही ताराघट उषा नागरी' के दर्शन इस युवक ने इन गये पाँच सालों में बहुत कम किया है।''[2] वातावरण का सही बोध कराने के उद्देश्य से कभी प्रकृति चित्रण शैली को भी सहारा लेता है। ''लंबी सीधी सडक पर चाँदनी आधी नहीं थी क्योंकि दोनों ओर अट्टालिकाएँ नहीं थी, केवल किनारे पर कुछ कुछ दूरियों से छोटे-छोटे पेड लगे हुए थे। मौन शीतल चाँदनी सफेद कफन की भाँति रास्ते पर बिछती हुई दो क्षितिजों को छू रही थी।''[3] इस तरह विभिन्न शेलियों के मिश्रण ने रचनाविधान की गहनता बढ़ गयी है और कथ्य को और गहन कर दिया है। तनाव और संघर्ष कहानियों को संवेगात्मक संस्पर्श प्रदान करते हैं बीच-बीच में गंभीर फैंटास्टिक बिंबों और प्रतीकों की सर्जना द्वारा कथा शिल्प को यथार्थ की साँवली गहराइयों तक पहुँचाते हैं। 'क्लॉड ईथरली' 'पक्षी और दीमक' 'अंधेरे में'

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 184 85
वही 77
वही पृ 86

'विपात्र' 'सतह से उठता आदमी' 'काठ का सपना' आदि परवर्ती कहानियों में इस परिवर्तन की नई दिशा सूचित है।

मुक्तिबोध की तमाम कहानियाँ संवाद के द्वारा विकसित होती है। हमारेलिए विचारणीय पक्ष यह है कि यह पक्ष शिल्प को किस प्रकार प्राभावित करता है। कहानियों में ये संवाद वर्णनात्मकता के बीच आ जाते हैं। कहीं आत्म संवाद है तो कहीं पात्रों के बीच के संवाद होते हैं और कहीं ये किसी बहस का रूप ले लेते हैं। 'एक साहित्यिक की डायरी' में इसके बारे में लेखक ने स्वयं बताया है - ''मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उस समय मेरे अंतकरण के भीतर एक कोई और व्यक्तित्व बैठा था। मैं उसे महसूस कर रहा था। किंतु अब तो उसने भीतर से मुझे बिलकुल ही पकड लिया था।''[1] इस प्रकार वह उनके ही प्रतिरूप बनकर कविता या कहानी का नायक बन जाता है। कभी ऐसा लगता है कि यह प्रतिरूप मैं या संवाद-दाती का ही दूसरा व्यक्तित्व है। इस कारण पात्र के रूप में मैं की अवधारणा उनके रचना शिल्प से भी संबंधित है। अतः कहानी में व्यक्त तनाव का, संघर्ष का, लेखकीय व्यक्तित्व से अटूट संबंध होने के कारण कहानी का नायक मैं लेखकीय प्रतिरूप बन कर आता है। इससे कहानी के संवेदनात्मक शिल्प में खास प्रभविष्णुता आ जाती है। 'विपात्र' कहानी का मैं मुक्तिबोध का आदर्श पात्र है जो पूँजीपतियों के मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों पर प्रहार देते हुए कहते हैं - ''रिश्वत देना रिश्वत लेना तो बुराई है न उसका प्रयोग करते हुए कितने काम नही किये कराने जाते। लेकिन चोर और वह भी खाने-पीने की चीज़ों की, जमीन जायदाद की, उसके लोगों पर जघन्य अपराध है।''[2]

मुक्तिबोध की कहानियों के प्रतीकात्मक पात्र वर्गबिद्ध हैं। 'पक्षी और दीमक' का संस्थापति जो सत्ताधारी बेइमान बुजुर्ग वर्ग का प्रतीक है जो मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की शक्ति को वशवर्तिनी बना रखा है। विपात्र का बॉस इस कोटि का प्रतीकात्मक पात्र है जो मध्यवर्गीय समाज को गुलाम बनाकर अपनी अभिलाषाओं को अपने अनुसार मोडनेवाला है। 'समझौता' कहानी का सर्कस कंपनी का मैनेजर भी इसी श्रेणी का पात्र है। कुछ

---

1 एक साहित्यिक की डायरी मुक्तिबोध, पृ 6

2 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 220

और पात्र हैं जो मध्यवर्गीय मानसिकताओं को प्रतिनिधित्व भी करते हैं। 'पक्षी और दीमक' कहानी की अंतर्कथा के रूप में जिस पक्षी की कहानी है वह प्रतीकात्मक है। दीमकों के लालच में अपने एक-एक पंख को बेचकर अंत में पंखहीन होकर बिल्ली के शिकार होने वाला पक्षी वस्तुतः उस विवेकहीन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का प्रतिनिधित्व करता है। पक्षी और दीमक का सांप मध्यवर्गीय जहरीली मनोवृत्ति का प्रतीक है।

अंधेरे में कहानी का अंधेरे से डूबा नगर आज की कलुषित व्यवस्था का प्रतीक है। व्यवस्था की कलुषता को अन्य कई प्रतीकों के माध्यम से मुक्तिबोध ने चित्रित किया है जैसे विपात्र का विद्याकेंद्र, समझौता का सर्कस कंपनी आदि। उन प्रतीकों के माध्यम से आज की भ्रष्ट व्यवस्था को उजागर करने में लेखक सफल हुए हैं।

इन प्रतीकों के अतिरिक्त तालाब, पानी, सूना महल, भूतहा मकान, गुहा, सूनी सडक, विशाल रेतीले मैदान संस्थाएँ आदि की भी प्रतीकात्मक भूमिका मुक्तिबोध की कहानियों को विशिष्ट बनाती हैं। प्रतीक व्यवस्था को उजागर करने केलिए मुक्तिबोध ने जिन शब्द एवं वाक्यों को भी प्रतीकवत् किया है वे कहानी के स्दर्भ में सांकेतिकता के अच्छे उदाहरण हैं जो आधुनिक कहानी की एक महत्वपूर्ण शैल्पिक उपलब्धि है। कुछ कहानियों में रूपक रचना की भी द्वैतता दिखलाई देती है।

मुक्तिबोध की कहानियों में प्रतीक कहीं कहीं एक मिथक बन जाते हैं। हर कलाकार की सांस्कृति की पहचान में ये मिथक सहायक हैं। रचना में मिथक की भुमिका के बारे में अज्ञेय ने यों लिखा है "जब भी, जहाँ भी हमारी रिएलिटी की पहचान संदिग्ध होती है, तभी वहीं हम मिथक का सहारा लेते हैं क्योंकि मिथक रिएलिटी की पहचान का हमारा सबसे पुराना साधन रहा है।"[1]

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं और कहानियों में समकालीन सच्चाई को एक विस्तृत आयाम देने की वजह से मिथकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इस संदर्भ में उभरनेवाली मुक्तिबोध की दो रचनाएँ हैं ब्रह्मराक्षस कविता और बारह्मराक्षस की शिष्य नामक कहानी। दोनों में एक समान तत्व के रूप में ब्रह्मराक्षस वर्तमान है। भारतीय जनमानस में ब्रह्मराक्षस ज्ञानी, अकाल में मृत्यु प्राप्त परिणामयत् अपने ज्ञान संप्रेषण में

---

1 सोत और सेतु अज्ञेय पृ 69

असमर्थ ब्राह्मण है जिसका मिथक मुक्तिबोध ने अपनी कविता और कहानी प्रतीकवत् चित्रित किया है। लेखकीय संकट अर्थात् अभिव्यक्ति की तडप से पीडित आत्मचेतना एवं विश्वचेतना लेखकीय चेतना को चित्रित करने केलिए ब्रह्मराक्षस का मिथक अर्थसंगत है। इस मिथकीय परिवेश के कारण अपने समय की एक सार्थक समस्या को गहराई, तीव्रता और सर्वकालीन प्रासंगिकता मिल सकी।

शभुनाथ ने अपने एक लेख में लिखा है - ''सामूहिक अचेतन में विद्यमान सृजनशील मिथक जीवन के नये तनावों से जुडकर नया अर्थ ग्रहण करते है।''[1] अतः सांस्कृतिक अचेतन के अलावा लोगों के मन में जो प्रतीक रूढ बन गये हैं उनका भी एक मिथकीय आयाम उभरता है। मुक्तिबोध ने भी सामूहिक अचेतन के मिथक को समकालीन समस्या की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम बनाया है। इस दृष्टि से उनकी कहानी उल्लेखनीय है पहले, उन्होंने क्लॉड इथर्ली को अणुयुद्ध के विरोध करने वाली आत्मा की आवाज़ का दूसरा नाम माना तो फिर उसे आध्यात्मिक अशांति का, आध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलंत प्रतीक माना। वही प्रतीक अंत में सचेत जागरूक संवेदनशील लोगों का प्रतीक बन जाता है जो अपने युग के पापाचार रूपी, शोषण रूपी डाकुओं के उस व्यापक अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। स्पष्टतः क्लॉड ईतरली का प्रतीक एक व्यापक सामूहिक चेतना के सांस्कृतिक द्वंद्व से जुडकर एक मिथकीय रूप प्राप्त करता है। जब ऐसे बिंब असाधारण प्रतीकात्मकता से युक्त होकर हमारी वर्गचेतना से संबंध स्थापित कर लेते है तब वे मिथक से भी आगे बढकर आद्यबिंब हो जाते हैं। ''आर्केटाइप सामान्यतः प्रतिरूपों का मूल प्रारूप या जाति विशेष की वस्तुओं के जाति-बोधक अनिवार्य तत्वों का द्योतक प्रत्यय है।''[2] जातीय संस्कृति से जितने बिंब हमारे मन में जमकर समय के अनुसार सार्थक हो उठते हैं उनको आर्किटाइप या आद्यबिंब मानने पर यह लक्षित होता है कि उनका संबंध वर्गचेतना से उद्‌भूत मिथकों से है। आद्यबिंबों की संख्या कविताओं की अपेक्षा कहानियों में कम है।

---

1 आलोचना एप्रिल जून 1972 शभुनाथ, (मिथक अंतर्मन का सृजनशील सांस्कृतिक द्वंद्व), पृ 92
आद्यबिंब और मुक्तिबोध की कविता कृष्णमुरारी मिश्र, पृ 22

अंधेरा मुक्तिबोध की रचनाओं की मात्र प्रतीति नहीं बल्कि वह एक ऐसा अहसास है जिसके आवरण को तोडना भी अनिवार्य समझते हैं अंधेरे की प्रतीति इसलिए आद्यबिंबात्मक स्तर तक पहुँचती है कि वह परिवर्तन के पहले की स्थिति है। अंधकार से प्रकाश की ओर जाने का आग्रह मुक्तिबोध के समान उनके पात्रों में भी है। हमारे उपनिषदों में नश्वर अंधकारपूर्ण भौतिक जगत से अनश्वर प्रकाशपूर्ण जगत की ओर जाने का आग्रह आध्यात्मिक स्तर का है। मुक्तिबोध की दृष्टि भौतिकवादी ज़रूर थी। इसलिए कि समसामयिक जटिल व्यवस्था की कलुषताओं को अंधकार के प्रतीक के रूप में चित्रित कर उस व्यवस्था के परिवर्तन का आग्रह प्रकट किया गया है। अंधकार को हटाने का आग्रह 'अंधेरे में' के युवक में भी है, 'काठ का सपना' कि पिता में भी है और अन्यत्र कई पात्रों में हैं। ''अंधेरा जड हो गया और छाती पर बैठ गया। नहीं उसे हटाना पडेगा ही सरोज के पिता सोच रहे थे।''[1]

मुक्तिबोध ने प्रतीक, बिंब, आद्यबिंब और मिथकों को समन्वित कर फैंटसी के निर्माण द्वारा अपनी रचनाओं को बाहरी यथार्थ से हटाकर एक अमानवीय यथार्थ में तब्दील कर दिया है। समझौता कहानी की व्यवस्था का अमानवीय ट्रेनिंग द्वारा मनुष्य को पशु बनाने का फैंटसीनुमा चित्र देखिए - ''उसके शरीर पर अत्याचार का नया दौर शुरू हुआ। उसने अजीबोगरीब ढंग की कवायदें करायी जाती रीछो के मुँह में हाथ डलवाये जाते, रीछ छाती पर चढवाया जाता और ज़रा गलती की कि हण्टर। कुछ रीछ बडे शैतान थे। उसका मुँह चाटते, कान काट लेते। उनके बालों में कीडे रहा करते और हमेशा यह डर बना रहता कि कहीं रीछ उसे मार न डाले। शुरू में व्यक्ति को चुना हुआ माँस मिलता अब उसको सामने कच्चे माँस की थाली जाने जगी। अगर न खाये तो मौत, खाये तो मौत।''[2] 'ब्रह्मारक्षस का शिष्य' कहानी में लेखक ज़रा मानवीकृत रूप से कहानी शुरू होती है लेकिन फैंटसीकृत होने पर एक तरह की अमानवीयता आ जाती है। अंतिम दिन की भोजनवेला में खिचडी में घी डालने केलिए उद्यत शिष्य को रोकते हुए ''उन्होंने अपना हाथ इतना बढा दिया कि वह कक्ष पार जाता हुआ अन्य कक्ष में प्रवेश

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 172
वही 138

कर क्षण के भीतर घी की चमचमाती लुटिया लेकर शिष्या की खिचडी में घी उडलने लगा।''[1]

मुक्तिबोध यथार्थ पर ज़ोर देनेवाले रचनाकार है। लेकिन वे सतही यथार्थ के पक्षधर नहीं है। इसलिए यथार्थ की तह तक पहुँचने केलिए उन्हें फैंटसी का प्रयोग करना पडा है। उनकी फैंटसियाँ यथार्थ की गहरी अभिव्यक्तियाँ है।

मुक्तिबोध की कहानियों का रचनाविधान सामान्यता और असामान्यता का सहज मिश्रण ही प्रस्तुत करता है। सामान्यता उनका इच्छित आदर्श है। लेकिन असामान्यता समय का स्थित्यंधन से संबंधित है। उन्होंने कभी भी अपने तथ्य को समय से अलग नहीं किया। इसलिए उनका रचनाविधान बहुविध रीतियों में विकसित होता है। इस कारणा उनका रचनाविधान जटिल भी हो गया हैं जो कि अनिवार्यता भी रही है।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली तीन मुक्तिबोध, पृ 119

अध्याय छः

# मुक्तिबोध की आलोचना

## हिन्दी आलोचना और मुक्तिबोध

आलोचना, साहित्य का सही दिशा निर्देशन करती है। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल में लक्षण ग्रन्थों की रचना से आलोचना का बीज बोया गया। लेकिन उसका पल्लवन आधुनिक काल में ही हुआ। यद्यपि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे श्रेष्ठ आलोचकों के आगमन से आलोचना क्षेत्र में क्रान्तिकारी प्रगति हुई फिर भी हिन्दी आलोचना में प्रतिभासंपन्न आलोचकों की कमी थी।

छायावाद के प्रतिष्ठित कवियों - प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी - ने अपनी काव्य कृत्तियों तथा छायावाद को प्रतिष्ठापित करने का स्तुत्य कार्य किया। कवि आलोचकों की परंपरा नयी कविता तक आते-आते सुदृढ हो गयी। कवि आलोचकों के रूप में अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादूर सिंह, कुँअर नारायण, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह आदि प्रतिभा संपन्न महान कवि आलोचकों का उदय नयी कविता के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय है।

आलोचना क्षेत्र में मुक्तिबोध का आगमन कवि आलोचक के रूप में इस दौर में हुआ। उस समय साहित्यिक क्षेत्र में कवि-आलोचकों का ध्यान अपने मतों की स्थापना की ओर था। मुक्तिबोध की नज़र साहित्य की प्रगतिशीलता पर थी। मुक्तिबोध ने लिखा

''मैं मुख्यतः विचारक न होकर केवल कवि हूँ किंतु आज का युग ऐसा है कि विभिन्न विषयों पर मनोमंथन करना पडता है। अपने काव्य जीवन की यात्रा में मुझे जो चिंतन करना पडा वह विज्ञ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ''[1]

मुक्तिबोध मार्क्सवादी सामाजिक दर्शन को आधार बनाकर बिलकुल तटस्थ दृष्टि से ईमानदारी के साथ आलोचना करने लगे। दुनिया के प्रभावशाली दर्शनों तथा मानव इतिहास के प्रगतिशील विकास की सभी अवस्थाओं की समझ मुक्तिबोध में थे। इसलिए साहित्य के बुनियादी तत्वों जैसे साहित्यिक ईमानदारी, कलाकार का कर्तव्य, रचना

---

1 नयी कविता का आत्मसंघर्ष, (भूमिका)

प्रक्रिया, साहित्यिक तनाव, आधुनिक भावबोध, सौन्दर्यशास्त्र आदि पर उन्होंने प्रामाणिकता से विचार किया। उन्होंने साहित्य का संबंध मनुष्य से जोडा। उन्होंने जनता केलिए जनता का साहित्य बनाना चाहा। ''मुक्तिबोध हृदय और बुद्धि दोनों से मार्क्सवादी थे। वे मार्क्स के ऐतिहासिक समाज वैज्ञानिकविश्लेषण और उसके निष्कर्षों में आस्था रखनेवाले थे। इसलिए पूँजीवादी सामाजिक संरचना के स्थान पर समाजवादी सामाजिक संरचना उनका सामाजिक लक्ष्यादर्श था। इस आदर्श की पूर्ति के बिना वे जन-समाज की मुक्ति, शोषण, उत्पीडन और अन्याय से मुक्ति असंभव मानते थे। अपने इस आदर्श लक्ष्य से प्रेरित होकर वे समीक्षा की ओर उन्मुख हुए हैं''[1]

मुक्तिबोध मूलतः कवि के रूप में अतिसहम्मत है। एक प्रतिभाशाली आलोचक के रूप में भी वे प्रतिष्ठित है। कवि मुक्तिबोध और आलोचक मुक्तिबोध में भिन्नता नहीं है। उन्होंने सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक आलोचना लिखकर आलोचना के तमाम क्षेत्रों को अपने संस्पर्श से समृद्ध किया। 'एक साहित्यिक की डायरी' काव्य चिंतन पर आधारित निबंध संग्रह है। 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' और 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' तथा अन्य निबंधों में भी रचना संबंधी बुनियादी तत्वों के विस्तृत अध्ययन है। 'भारत इतिहास और संस्कृति' नामक इतिहास ग्रन्थ जिस पर मध्यप्रदेश सरकार ने पाबन्दी लगा दी थी। यह मुक्तिबोध की ज़िन्दगी केलिए बडी ट्राजेडी थी। 'नये साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र' में उन्होंने उस ओर संकेत किया है, ''देखिए 19 सितंबर, 1962 का सरकारी गज़ट। वह दिन मेरे लेखक जीवन की एक महान तिथि है''[2] 'कामायनी एक पुनर्विचार' जयशंकर प्रसाद की कामायनी पर मुक्तिबोध की समीक्षा है। इसमें उन्होंने कामायनी में चित्रित देव संस्कृति को सामंतवादी संस्कृति के रूप में चित्रित किया और उसको पूँजीवादी की आधारभूमि पर आधारित एक कथा प्रधान महाकाव्य माना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिंदी साहित्य के कुछ प्रमुख कवियों की कविताओं पर विचार किया है। वे सब व्यावहारिक समीक्षा के भीतर आते हैं। समीक्षा संबन्धी कुछ अपूर्ण लेख उन्होंने भी लिखे हैं, जो मुक्तिबोध रचनावली के चौथे और पाँचवें खंडों में प्रकाशित हैं। मुक्तिबोध

---

1 मुक्तिबोध का साहित्यिक विवेक और उनकी कविता डॉ लल्लन राय, पृ 87

मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध, पृ. 351

की आलोचना की सार्थकता समझने केलिए उनके आलोचना-संसार से गुजरना आवश्यक है।

## साहित्य का समाज दर्शन

मुक्तिबोध साहित्य संबंधी एक दृढ संकल्प रखनेवाले साहित्यकार हैं। साहित्य क्या है, साहित्य का सरोकार, साहित्य का उद्देश्य, साहित्यिक और समीक्षक आदि मुद्दे मुक्तिबोध की आलोचना में शामिल हैं। अपनी आलोचना से उनका लक्ष्य किसी साहित्यिकवाद की स्थापना नहीं है। साहित्य केलिए एक सच्चा परिदृश्य प्रदान करना उनका लक्ष्य रहा है।

मुक्तिबोध की दृष्टि में कोई भी साहित्यिकवाद गलत नहीं है। सभी दर्शनों का कोई न कोई मूल सत्य है। इसलिए किसी भी दर्शन का अंधा विरोध करना गलत है। यथार्थवादियों का रोमैण्टिक के प्रति द्वेष भाव का विरोध करते हुए वे लिखते हैं - मनुष्य की प्रकृति में क्या रोमांस का स्थान नहीं है? रोमांस तो प्रवाहमान जीवन-धारा का सेल्फ एसर्शन है। जिस तरह वसन्त ऋतु में वृक्षों के अन्दर तरुण ओज फूल पत्तियों का सृजन करता है। वैसे ही तरुण ओज स्त्री-पुरुष के अंतर्गत रोमांस उत्पन्न करता है। उनके शरीर में वह नवजीवन बनकर बहने लगता है।

मुक्तिबोध केलिए साहित्य व्यक्ति और समाज के संघर्ष की उपज है। इस द्वंद्व के मूल में समन्वयात्मक एकता है। साहित्यिक सृजन केलिए चेतन और अवचेतन मन को आवयविक संबन्ध का होना अनिवार्य हैं। मुक्तिबोध के विचार में अवचेतन दमित इच्छाओं की पुंज ही नहीं बल्कि प्राकृतिक शक्ति का एक गतिमान प्रवाह भी है, जिसके तत्व सामाजिक हैं। इस प्रकार अवचेतन चेतन को सशक्त बनाता है और चेतन अवचेतन शक्ति व्यक्तिगत होते हुए भी उसका कण्टेन्ट बाह्य और समाजगत है। साहित्यिक सृजन में यह अवचेतन स्रोत कलाकार को अनायासता प्रदान करता है और रंगीन चित्रात्मकता से भरता है। अवचेतन के साथ कल्पना का सामंजस्य भी अनिवार्य है। इससे अवचेतन को उदात्त

बनाता है। व्यक्ति और समाज के सामंजस्य से चेतन और अवचेतन का सामंजस्य सफल हो सकता है अन्यथा नहीं।

मुक्तिबोध ने साहित्य का उद्देश्य सास्कृतिक परिष्कार माना है। उनके अनुसार साहित्य में जनता के जीवन-मूल्यों तथा जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करना चाहिए। जनता के तमाम बन्धनों से मुक्ति के रास्ते की ओर अग्रसर करनेवाला साहित्य आवश्यक है। मुक्तिबोध कहते हैं ''जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श मनोरंजन से लगाकर तो क्रांतिपथ पर मोडनेवाला साहित्य, मानवीय भावनाओं का उदात्त वातावरण उपस्थित करनेवाला साहित्य, जनता का जीवन चित्रण करनेवाला साहित्य, मन को मानवीय और जन को जन-जन करनेवाला साहित्य, शोषण और सत्ता के घमण्ड को चूर करने वाले स्वातंत्र्य और मुक्ति के गीतों वाला साहित्य, प्राकृतिक शोभा और स्नेह के सुकुमार दृश्योंवाला साहित्य सभी प्रकार का साहित्य सम्मिलित है''[1] स्पष्ट है कि मुक्तिबोध साहित्य के मानवीय पक्ष को ही प्रधानता देना चाहता है। कारण यह है कि साहित्य के मूल में इसी भाव का होना ज़रूरी है क्योंकि तभी वह गंभीर मसलों को समाविष्ट कर सकता है।

साहित्य में पक्षधरता का संबंध मनुष्य के विश्वबोध और सद्-असद्-विवेक बुद्धि अर्थात अंतरात्मा के विवेक से हैं। पक्षधरता हमेशा रही है, जाने-अनजाने। प्रश्न यह है कि वह पक्षधरता सही ढंग की है या गलत ढंग की। लेकिन आज के ज़माने में लोग आत्म रक्षा केलिए मूल्यबोध छोडकर समझौते केलिए तैयार होते हैं। अतः अधिकांश मानव गलत ढंग की पक्षधरता के शिकार हैं। मनुष्य में विश्वबोध और अंतरात्मा का विवेक नष्ट हो रहा है। सही ढंग की पक्षधरता साहित्य केलिए अभिकाम्य है।[2]

मुक्तिबोध के अनुसार साहित्य को विविध पक्षीय दृष्टियों से देखना चाहिए। कारण यह है कि साहित्य जीवन से उपजता है और अंततः उसका प्रभाव भी जीवन पर पडता है। यह जीवन का प्रतिबिंब है। इसलिए हमें सबसे पहले जीवन की चिंता होनी चाहिए। मनुष्य का जीवन जितना व्यापक होगा,विविध क्षेत्रीय होगा तथा जीवन-जगत की विभिन्न

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध पृ 76
वही 180

विकासमान प्रक्रियाओं में भाग लेता रहेगा उतना ही वह समृद्ध होगा। मनुष्य को मानवोचित जीवन प्राप्त करने केलिए जिन आध्यात्मिक गुणों की आवश्यकता है इसके संबंध में हमारे द्वारा प्राप्त निष्कर्ष की योग्यता आदि का चित्रात्मक, यथार्थवादी अंकन साहित्य के महत्व को बढाते हैं।[1] भावानुभूति साहित्य केलिए महत्वपूर्ण है। जीवन मूल्य और आदर्श प्रस्थापित करनेवाला साहित्य श्रेष्ठ तभी हो सकता है जब उसमें उत्कट भावानुभूति हो। जिस चीज़ के प्रति भावानुभूति है वह वस्तु उस अनुभुति को उत्कट करने में सहायक भी है। वे जीवन मूल्य उस अनुभूति को तपाने में सहायक हैं। साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य बढ जाता है।[2]

साहित्य में जिज्ञासा का महान रोल होता है। जिज्ञासा आग्रहों, दुराग्रहों से मुक्त है। इसलिए साहित्य में यथार्थवादी अंकन केलिए जिज्ञासा अनिवार्य है। मुक्तिबोध के शब्दों में, ''कहा जाता है कि साहित्य हृदय की भावनाओं से उत्पन्न होता है। इस वाक्य में यह जोडा जाना चाहिए कि भावना जिज्ञासा की पैठ के, उसके द्वारा की जानेवाली तटस्थ तथा तीव्र खोज के बिना ऊँचा साहित्य उत्पन्न नहीं कर सकती।'' [3]

उत्तम साहित्यिक कृतियों के सृजन केलिए साहित्यकारों को विश्वदृष्टि की अनिवार्यता है। विश्वदृष्टि या विचारधारा साहित्यिक गतिशीलता केलिए अनिवार्य हैं। आज के ह्रासोन्मुख साहित्य के उदय के कारण ही विश्वदृष्टि का आभाव हो रहा है। मुक्तिबोध लिखते हैं - ''विचारधारा का न होना, या अविश्वास या अश्रद्धा को विचारधारा मान लेना, प्रश्न को ही उत्तर का स्थान देकर हाथ झाड लेना हमारी हीनतम साहित्यिक प्रवृत्ति का लक्षण है।''[4] विश्वदृष्टि लेखक केलिए इसलिए अनिवार्य है कि वह मानव चेतना का अंग है।

मुक्तिबोध संघर्ष के पक्षधर कलाकार हैं वे उत्तम साहित्यिक कृति को संघर्ष की उपज मानते हैं। साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति केलिए संघर्ष अनिवार्य है। अपनी

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध, पृ 182-83
2 वही, पृ 183
3 वही, पृ 183
वही, चार, पृ 45

आलोच्य कृतियों में कई बार उन्होंने संघर्ष के तीन तत्वों पर विचार किया है।[1] कला के संघर्ष को तत्व के एकत्रीकृत का तत्व के परिष्कार का, तत्व के विकास का संघर्ष मानते हैं। साहित्य में तत्व और रूप की प्राप्ति केलिए वास्तविक जीवन को आत्मसात करने का, संघर्ष, अभिव्यक्ति शैली की सीमाओं से संघर्ष और शब्द सभ्यता की अक्षमताओं से संघर्ष अनिवार्य है। कलाकार के तीन प्रकार के संघर्षों में सुंदर कलाकृति के सृजन केलिए अभिव्यक्ति का संघर्ष, कलात्मक चेतना के आंगरूप संवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार, जीवन जगत में भीगने, रमने, अपने को निजबद्धता से अधिकाधिक दूर करने अधिकाधिक मानवीय बनने का संघर्ष अर्थात् निजबद्धता से निजमुक्त होने का संघर्ष या सीमित अवस्था से व्यापकता प्राप्त करने का संघर्ष और वास्तविक जीवन के बुनियादी तथ्यों के कारण बननेवाली हलचलों की ज़िन्दगी के अलग अलग ढंग के ताने बानों का ताजुर्बा हाज़िल करने केलिए मानव समस्याओं को गहराई से ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक रूप से अनुभूत करके मानवता के उदार लक्ष्यों से एकाकार होकर वास्तविक जीवन-अनुभवों की समृद्धि प्राप्त करने के हेतु वह संघर्ष जिसे हम तत्व केलिये तत्व प्राप्ति केलिए संघर्ष कह सकते हैं। अर्थात् यह तीसरा संघर्ष उद्देश्य-प्राप्ति का संघर्ष है।[2] सच्चे मनीषी कलाकार के जीवन में इन तीनों संघर्षों को एक साथ अपनाते हैं। इसलिए कलाकार का जीवन पीडाग्रस्त होता है केवल सृजन पीडा से नहीं अन्य पीडाओं से भी। कला का पहला संघर्ष अर्थात् संघर्ष का संबंध मानव की वास्तविकाता के अधिकाधिक सक्षम उद्घाटन अवलोकन से हैं। दूसरे का संबंध चित्रण सामर्थ्य से हैं। तीसरे का संबंध थियरी से है, विश्वदृष्टि के विकास से है वास्तविकताओं की व्याख्या से है।[3]

आज की कविता के भीतर तनाव का वातावरण है। यह पुराने ज़माने से ही कहीं बहुत अधिक परिवेश के साथ द्वंद्व स्थिति में प्रस्तुत है। इसलिये यह आवश्यक है कि कवि हृदय के द्वंद्वों का भी अध्ययन करें। अर्थात् वास्तविकाता में बौद्धिक दृष्टि द्वार भी

---

1 मुक्तिबोध रचनावली 5 मुक्तिबोध,वही, 201
2 वही पृ 211
3 वही पृ 101

अन्तः प्रवेश करें और ऐसी विश्वदृष्टि का विकास करें जिससे व्यापक जीवन जगत् की व्याख्या हो सकें।[1]

अपने समानधर्मियों से सामंजस्य कर गरीबी की मनोदशाओं को समझनेवाले लोग तीन बातें अर्जित करते हैं। यथा (1) व्यक्तिगत संघर्ष को सामाजिक संघर्ष में बदलने की प्रक्रिया और सामाजिक संघर्ष में व्यक्तिगत संघर्ष का महत्व (2) नये मानवतावादी मूल्यों केलिए किये जानेवाले संधर्ष में चरित्र का महत्व, वैज्ञानिक विचारधारा का महत्व जिस पर विश्वदृष्टि आधारित है। विश्वदृष्टि में मानवीय मनोहारिता और सुदृढता भी शामिल है। इस चरित्र में मानवीय सुकुमार गुणों का समन्वय तो है ही साथ ही उसमें समाज के अन्दर के दुष्प्रभावों से उत्पन्न धारणाओं के विरुद्ध अपनी सत्ता स्थापित करने की प्रवृत्ति हो। (3) अनुभवजन्य तथा विचारजन्य ज्ञान की प्राप्ति का अनुरोध होता है कि ज्ञान प्राप्तिकर्ता का चरित्र भी उस ज्ञान द्वारा निश्चित किये गये मानदण्डों और कार्यों की पूर्ति करें इस पूरे विकास केलिए व्यक्ति को एक से एक भायानक तनावों की राहों से गुज़रना पडता है। मुक्तिबोध तनाव को ऐतिहासिक भी मानते हैं क्योंकि समाज के भीतर चलनेवाली परिवर्तन प्रक्रियाओं का वे महत्वपूर्ण अंग है। इन तनावों का मर्म समझना, उनको उनके वास्तविक संदर्भ में देकर संवेदनात्मक ज्ञान के हार्दिक माध्यम द्वारा काव्य में प्रकट करना लेखक का ऐतिहासिक कार्य है।

मुक्तिबोध ने केवल साहित्य के तत्वों पर ही विचार नहीं किया है। साहित्य को रंग-रूप देनेवाले लेखक, उसे मार्गदर्शन देनेवाले समीक्षक के कर्तव्य एवं उनके आवश्यक गुणों पर ही मुक्तिबोध ने विचार किया है। उनके विचार में लेखक का जीवन आदर्श और साहित्यिक आदर्श में सामंजस्य अनिवार्य है। इसलिए लेखक केलिए आवश्यक है कि मूल्याधिष्ठित जीवनादर्श प्राप्त करें और उसे ही साहित्य में अभिव्यक्त करें। सच्चे लेखकों को अपनेलिए आवश्यक गुणों पर सचेत रखना ज़रूरी था। मुक्तिबोध के विचार इस प्रकार हैं - ''सच्चा लेखक जनता है कि वह कहाँ कमज़ोर है, कि उसने कहाँ सचाई से जी चुराया है कि उसने कहाँ लीपा पोती कर डाली है, कि उसने कहाँ उलझा-चढा दिया है, कि उसे वस्तुतः कहना क्या था और कह क्या गया है, कि उसकी अभिव्यक्ति कहाँ

---

1 मुक्तिबोध: रचनावली पाँच मुक्तिबोध पृ. 100

ठीक नहीं है वह इसे बखूबी जानता है। क्यों कि वह लेखक सचेत है। सच्चा लेखक अपने खुद का दुश्मन होता है। वह अपनी आत्म-शान्ति को भंग करके ही लेखक बना रह सकता है। इसलिए सेखक अपनी कसौटी पर दूसरों की प्रशंसा को भी कसता है और आलोचना को भी वह अपने खुद का सबसे बडा आलोचक होता है।''[1]

अपनी कृति का महत्व बढाने केलिए बहुत बडा थीम उठा लेने से काम नहीं चल सकता है। उसकेलिए आवश्यक है मन पर अत्यधिक प्रभाव या अघात उत्पन्न करने वाले अंशों के उठाना।

संक्षेप में मुक्तिबोध साहित्यिक कार्य को पूरी तरह से सामाजिक कार्य मानते हैं। साहित्य का समाज दर्शन पर विचार करने के लिए साहित्य, साहित्यकार, आलोचक इत्यादि पक्षों से गुज़रकर ही उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं।

## रचना प्रक्रिया

हिन्दी साहित्य मे रचना प्रक्रिया पर सबसे गंभीरता तथा गहराई से मौलिक विचार मुक्तिबोध ने किये हैं। उन्होंने अपनी सभी आलोच्य कृतियों में रचना प्रक्रिया को अपेक्षित स्थान दिया है। काव्य की रचना प्रक्रिया का विश्लेषण, आलोचना केलिए अत्यंत अपेक्षित है। रचना प्रक्रिया के विश्लेषण केलिए कलाकार का व्यक्तित्व विश्लेषण भी आवश्यक है। कवि-स्वभाव, कवि-दृष्टि और विषयवस्तु के अनुसार रचना प्रक्रिया बदलती है। कल्पना, भावना, बुद्धि, संवेदनात्मक उद्देश्य और इतिहास भूगोल को रचनाप्रक्रिया के मूलतत्व के रूप में स्वीकार किया है। मुक्तिबोध ने अपने समय की सच्ची और सही सृजनशीलता को बल देने केलिए सृजन प्रक्रिया का वर्णन और विश्लेषण किया है। उन्होंने आलोचना की पूर्णता केलिए इन सभी तत्वों का मूल्यांकन आवश्यक माना है। रचनाप्रक्रिया संबंधी मुक्तिबोध के विचार हिन्दी आलोचनात्मक इतिहास की अमूल्य निधि है।

'एक साहित्यिक की डायरी' का 'तीसरा क्षण' शीर्षक प्रथम लेख रचनाप्रक्रिया संबंधी है। इसमें कला के तीन क्षणों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है, ''कला का

---

1 मुक्तिबोध रचनावली चार मुक्तिबोध, पृ 53

पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैंटसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैंटसी अपनी आँखों के सामने ही खडी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैंटसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और प्रक्रिया की परिपूर्णता तक की गतिमानना।''[1]

मुक्तिबोध की दृष्टि में कला बाहरी और भीतरी तत्व व्यवस्ता का भाग है। यह एक ऐसा अंतर्तत्व है या मानसिक प्रतिक्रिया है जो बाहर के धक्कों से विकसित है। उस मानसिक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करने का जबरदस्त धक्का प्रथम क्षण में ही मिलता है। उससे वह तरंगायित होकर मनस्पटल पर उपस्थित होते हैं। कल्पना बिंब, स्वर, या प्रवाह से संवृत होकर उनमें रूप आ जाता है। सृजन प्रक्रिया का यह प्रथम क्षण है। कल्पना का कार्य यहाँ शुरू होता है बोध पक्ष भी इस क्षण में सक्रिय है। फैंटसी भी यहाँ जन्म लेती है। 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' शीर्षक लेख में इस क्षण को 'उद्घाटन क्षण'[2] बताया है। यही से दूसरा क्षण शुरू होता है। इस क्षण में रचनाकार की दृष्टि उस पर उद्घाटित तत्व रूप के रस में लीन होने लगती है। साथ ही बाहर से पर्यावलोकन भी करती है। फलतः एक ओर रस का प्रवाह या भाव प्रवाह अन्य समस्वभावी और समरूप अनुभवों को उस तत्व में मिला देता है, तो दूसरी ओर अंतकरण में संचित जीवन मूल्य या आदर्शात्मक सत्ता को जो अपने बाह्य जगत के पूर्वप्राप्त मूल्य है उस तत्व में मिलने लगती है। कल्पना उद्दीप्त होकर सवेदना से आप्लूत उस मूल तत्व को समरूप अनुभवों और जीवन मूल्यों से मिलाती हुई एक संश्लिष्ठ जीवन चीत्रशाला अर्थात् फैंटसी उपस्थित कर देती है। यह सामान्चीकरण का अवसर है। इससे फैंटसी को एक नया रूपरंग मिलती हैं।[3] रचना प्रक्रिया की इस स्थिति बद्धता से स्थिति मुक्त होने का या अपने से परे जाने का क्षण है। वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक होने के इस दौरान में फैंटसी वास्तविक अनुभव से स्वतंत्र बन बैठते हैं। फैंटसी अनुभव की कन्या है और उस कन्या का अपना स्वतंत्र विकासमान व्यक्तित्व है वह अनुभव से प्रसूत है इसलिए वह

---

1 मुक्तिबोध रचनावली, चार मुक्तिबोध, पृ 85
वही पाँच वही, पृ. 328
3 वही पृ 329

उससे स्वतंत्र है कला का यह दूसरा क्षण है कि जिसमें अंतर्तत्व या वेदनात्मक हेतु अधिक महत्वमय मालूम होता है। और अभिव्यक्ति केलिए छटपटाते हैं। इस छटपटाहट को हम शब्द रंग तथा स्वर में अभिव्यक्त करने लगते हैं तब कला का तीसरा क्षण शुरू होते हैं। शब्दबद्ध होने का यह क्षण सबसे अधिक दीर्घ क्षण है। इस क्षण भी शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर लेखक के समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह विकसित और परिवर्तित करती हुई बहने लगती है। इस प्रवाह में फैंटसी सारे रंग घुलकर अपना सारा व्यक्तित्व समास्त चेतना के साथ बहने लगती है। इस परिवर्तन में फैंटसी अपने मूलरूप से बहुत अधिक परिवर्तित होकर नवीन रूप धारण करती है।[1] स्पष्ट है कि मुक्तिबोध केलिए फैंटसी मात्र शिल्प सजगता नहीं है। वह उनके काव्यदर्शन का अभिन्न अंग है।

सृजन प्रक्रिया की गतिशीलता केलिए महत्वप्रतीति अनिवार्य है। यदि प्रथम क्षण में प्राप्त अनुभव के भीतर महत्व की भावना नहीं है तो वह दूसरे क्षण में परिणत नहीं होगा। अर्थात् प्रथम क्षण का वह अनुभव जीवन के अन्य साधारण अनुभवों से भिन्न होता है क्योंकि उसमें अनुभव और अनुभव के महत्व की भावना दोनों बीज रूप में रहने से दर्शकात्व और भोक्तृत्व की स्थिति मुक्तता और स्थिति बद्धता के परस्पर विरोधी बिंदु रहते हैं। नहीं तो भोक्तृत्व में दर्शकत्व कि स्थिति और आगे चलकर अनुभव में कल्पना का योग ही न होगा।[2]

## मुक्तिबोध का रचनात्मक संघर्ष

साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति केलिए संघर्ष अनिवार्य मानते हैं। मुक्तिबोध उत्तम कला के निर्माण केलिए तीन प्रकार के संघर्ष पर विचार करते हैं। कला तत्वों का एकत्रीकरण तत्व परिष्कार एवं तत्व के विकास का संघर्ष कला केलिए अनिवार्य है। तत्व के विकास और परिष्कार के बिना हम अपना स्वयं का जीवन भी परिष्कृत नहीं कर सकते, जान नहीं सकते। तनाव जो कविता की आधार भूमि है जो द्वंद्व संघर्ष से भी

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध, पृ 329
वही चार- वही पृ 88-89

उत्पन्न हो सकता है। आज के कवि को आत्मचेतस् होकर अपने काव्य तत्व के विकास परिष्कार और समृद्धि केलिए संघर्ष करना अनिवार्य है।

साहित्य के तत्व और रूप प्राप्ति केलिए तीन प्रकार का संघर्ष अनिवार्य है। वास्तविक जीवन को आत्मसात करने का संघर्ष, अभिव्यक्ति शैली की सीमाओं से संघर्ष और शब्द-सम्पदा की अक्षमताओं से संघर्ष। मुक्तिबोध ने कलाकार के तीन प्रकार के संघर्ष की बात बताई है। एक सुंदर कलाकृति के सृजन केलिए अभिव्यक्ति का संघर्ष, दूसरा निजबद्धता से निजमुक्त होने का संघर्ष और तीसरा उद्देश्य प्राप्ति का संघर्ष है। सच्चे मनीषी कलाकार के जीवन में ये तीनों संघर्ष एक साथ स्वाभाविक रूप से चलते रहते हैं। प्रथम का संबंध चित्रण सामर्थ्य से है, दूसरे का मानव वास्तविकता के अधिकाधिक सक्षम उद्घाटन अवलोकन से है और तीसरे का संबंध थियरी से है विश्वदृष्टि के विकास से है, वास्तविकताओं की व्याख्या से है। मुक्तिबोध के शब्दों में - ''चूँकि ज्ञान के क्षेत्र में ही भावना विचारण करते हैं इसलिए ज्ञान को अधिकाधिक मार्मिक यथार्थमूलक और विकसित करने का जो संघर्ष है, वह वस्तुतः कलाकार का सच्चा संघर्ष है।''[1]

आज कविता पुराने काव्य-युगों से कहीं अधिक, बहुत अधिक, अपने परिवेश के साथ द्वंद्व स्थिति में प्रस्तुत है। इसलिए उसके भीतर तनाव का वातावरण है इसलिए यह आवश्यक है कि हृदय के द्वंद्वों का भी अध्ययन करे, अर्थात् वास्तविकता में बौद्धिक दृष्टि द्वारा भी अतः प्रवेश करें, और ऐसी विश्वदृष्टि का विकास करें जिससे व्यापक जीवन जगत की व्याख्या हो सके तथा अंतर्जीवन के भीतर का आंदोलन आर-पार फैली हुई वास्तविकता के संदर्भ से व्याख्यात विश्लेषित मूल्यांकित हो। नामवर सिंह के शब्दों में ''मुक्तिबोध का तनाव दुहरा है एक ओर अपने परिवेश के साथ दूसरी ओर स्वयं अपने अंदर''[2]

बातचीत, बहस, भाषण, लेखन, चित्रकला, काव्यसाहित्य आदि द्वारा इन बाह्य जगत के साथ सामंजस्य उत्पन्न करते हैं अथवा उसके साथ हम द्वंद्व में उपस्थित होते हैं।

---

1 मुक्तिबोध रचनावली चार मुक्तिबोध, पृ 112
कविता के नये प्रतिमान नामवर सिंह, पृ. 195

आज की कविता में सामंजस्य से अधिक द्वंद्व ही है। आज पद्याभास गद्य कविता के भीतर तनाव या घिराव का वातावरन् है।''[1]

साहित्य कार केलिए यह आवश्यक है कि अपने समानधर्मियों से सामंजस्य कर गरीबी की मनोदशाओं को समझ लें। मुक्तिबोध की राय में ऐसे तीन बातें अर्जित करते हैं (1) व्यक्तिगत संघर्ष को सामाजिक संघर्ष में बदलने की प्रक्रिया और सामाजिक संघर्ष में व्यक्तिगत संघर्ष का महत्व। (2) नये मानवतावादी मूल्यों केलिए किये जाने वाले संघर्ष में चरित्र का महत्व, वैज्ञानिक विचारधारा का महत्व जिस पर विश्वदृष्टि आधारित है, विश्वदृष्टि के विकास का महत्व इस विश्वदृष्टि में मानवीय मनोहारिता और सुदृढता भी सम्मिलित है। इस चरित्र में मानवीय सुकुमार गुणों का समन्वय एवं समाज के अंदर दुष्प्रभावों से उत्पन्न धारणाओं के विरुद्ध अपनी सत्ता स्थापित करने की प्रवृत्तियाँ भी शामिल है। (3) अनुभवजन्य तथा विचारजन्य ज्ञान की प्राप्ति का अनुरोध होता है कि ज्ञान प्राप्तिकर्ता का चरित्र भी उस ज्ञान द्वारा निश्चित किये गये मानदण्डों और कार्यों की पूर्ती करे। इस पूरे विकास केलिए व्यक्ति को एक से एक भयानक तनावों की राहों से गुजरना पडता है।

**संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना**

यह मुक्तिबोध की प्रसिद्ध अवधारणा है। संवेदना का संबंध भोक्तृत्व से है तो ज्ञान का संबंध दर्शकत्व से हो संवेदना का संबंध स्थितिबद्धता से है तो ज्ञान का संबंध स्थिति मुक्तता से है, संवेदना का संबंध वैयक्तिकता से है तो ज्ञान संबंध समाज या सामाजिकता से है। संवेदना का संबंध मन से हैं तो ज्ञान का बुद्धि से। संवेदना का अनुभव से संबंध हो तो ज्ञान का दृष्टि से। संवेदना का संबंध मूर्तता से है तो ज्ञान का संबंध अमूर्तन से। संवेदना का विशिष्टता से संबंध है तो ज्ञान का सामान्य से। अर्थात् रचना प्रक्रिया में ज्ञान में संवेदना का या संवेदना में ज्ञान का, मूर्तन में अमूर्तन का या अमूर्तन में मूर्तन का, निर्वैयक्तिकता में वैयक्तिकता या वैयक्तिकता में निर्वैयक्तिकता का सफल सम्मिश्रण होता

---

1 मुक्तिबोध रचनावली खंड मुक्तिबोध पृ 333

है। इस प्रकार एक तत्व में दूसरा तत्व के मिलन से मूल तत्व समाप्त नहीं होती बल्कि सार तत्व के रूप में इसके भीतर समाहित होती है।[1] संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना का जटिल द्वंद्वात्मक सम्मिश्रण दूसरे क्षण में ही होता है। इसकी सफलता केलिए संवेदनात्मक उद्देश्य तथा बुद्धि तत्व का सक्रिया सहयोग आवश्यक है।

कलाकार के व्यक्तित्व में एक साथ अनुभविता की स्थितिबद्ध संवेदना और दर्शक की स्थिति मुक्त दृष्टि है ये दोनों परस्पर विरोधी बातें एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करती हुई एक उच्चतर बिंदु पर फैंटसी खडी कर देती है इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया से परिष्कृत होकर कला का दूसरा क्षण आगे बढता जाता है जब यह क्षण बहुत आगे तक प्रवाहित हो जाता है तब आत्मपरकता में भी एक निर्वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिकता में भी एक आत्मपरकता उत्पन्न हो जाती है, मानो स्थितिबद्ध संवेदना ने स्थिति मुक्त दृष्टि को अपने स्थितिबद्धता प्रदान कर उसे अपनेलिए स्थितिमुक्तता ले ली हो। अर्थात् आत्मपरकता में निर्वैयक्तिकता का या निर्वैयक्तिकता में आत्मपरकता का स्थितिबद्धता में स्थितिमुक्तता का सफल सम्मिश्रण रचना प्रक्रिया में होता है।

मुक्तिबोध की इस प्रसिद्ध अवधारणा के बारे में कुछ प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार है

''मुक्तिबोध की संवेदना और ज्ञान अथवा ज्ञान और संवेदना का परस्पर मिश्रण नहीं है जिसे इलियट ने 'एकान्वित संवेदनशीलता' कहा है, बल्कि उससे कुछ अधिक है।''[2]

''व्यक्ति की संवेदनात्मक भावनात्मक प्रतिक्रियाओं की, वस्तु सत्य से प्रतिकृत होने की बात उन्होंने लगातार दुहराई है तथा पाया कि 'ज्ञान' या विश्वदृष्टि का विकास जैसी प्रतिक्रियाओं से गुज़र कर ही कवि की वैयक्तिकता, एक गहरे सामाजिक आशय में परिणत हो सकती है।''[3]

''आभ्यंतर या बाह्यीकरण, विश्वत्यागी सामंजस्य या द्वंद्व अथवा दोनों के भिन्न रूप में उपस्थित होता है''[4]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली चार मुक्तिबोध, पृ. 88 89
मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना नंद किशोर नवल, पृ 69
प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध का काव्य प्रभात त्रिपाठी, पृ. 120
कविता के नये प्रतिमान नामवर सिंह, पृ 192

## कामायनी एक पुनर्विचार

आलोचना के क्षेत्र में मुक्तिबोध का योगदान न केवल सैद्धांतिक पक्ष तक सीमित है बल्कि व्यावहारिक पक्ष पर भी बडा महत्वपूर्ण रहा है। उनका 'कामायनी एक पुनर्विचार' शीर्षक ग्रंथ प्रसादकृत कामायनी की मौलिक एवं सृजनात्मक आलोचना है। इसमें उन्होंने कामायनीकार तथा कामायनी के अन्य आलोचकों के मतों को प्रामाणिकता के साथ गलत साबित किया है। मुक्तिबोध के अनुसार साहित्य की समाक्षा करते समय तीन बातों पर ध्यान देना चाहिए। एक तो वह किन-किन स्रोतों से उद्‌गत होता है। साहित्य की उत्पत्ति किन-किन वास्तविकताओं के फलस्वरूप हुई है। उसकी अंतःप्रकृति कैसी है? उसका कालात्मक प्रभाव क्या है?[1] इन सवालों को ध्यान में रखकर वास्तविक जीवन के लक्ष्यों की दिशा में कामायनी की उपयोगिता तथा यथार्थ से कामायनी के सरोकरों पर विचारविमर्श प्रयुक्त किया गया है।

प्रसादजी का युग तथा उनके व्यक्तित्व की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रियाओं के संधनित योग को ध्यान में रखकर मुक्तिबोध ने कामायनी का विश्लेषण किया है। मुक्तिबोध कामायनी की कथा को केवल एक फैंटसी मानते हैं जिसमें मन की निगूढ वृत्तियों की अनुभुत जीवन समस्याओं के इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन स्थितियों का प्रक्षेप होता है।[2] मुक्तिबोध की राय में मनु को मनन मात्र का, मन मात्र का मानव मात्र प्रतिनिधि कहता सरासर गलत है। प्रसादजी के व्यक्तित्व, उनके काव्य, उनके जीवन तथा कामायनी में वर्णित देव सभ्यता के चित्रों के सामाजिक, ऐतिहासिक विश्लेषण से हमें यह पता चलता है कि यह देव-सभ्यता वह ह्रासशील सामंती सभ्यता है जो विश्व पूँजीवाद तथा ब्रिटीश साम्राज्यवादी पूँजीवाद के धक्कों से धराशयी हो गयी। पूँजीवाद के इस देशी और विदेशी प्रहार उसकेलिए प्रलय की समान ही रहे। यह सभ्यता तो विलास की

---

1 मुक्तिबोध रचनावली चार मुक्तिबोध, पृ 205

2 वही पृ 194

मोह-निद्रा में डुबी हुई थी इसके खिलाफ एकाएक बन्दूकें चलने लगी। तूफान चलने लगा। सामंती शासन इस जलप्रलय में सदा केलिए नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस तथ्य पर रोने केलिए मनु जैसे उत्तराधिकारी बच रहे जिन्होंने उस विलास-वासना का सुख देखा था। इसलिए मनु उस सामंत शासक वर्ग का प्रतीक है क्योंकि उस वर्ग की समस्त प्रवृत्तियाँ मनु में विद्यमान है। अहंकार, विलासिता, आत्ममोह, निर्बन्ध, उच्छृंखलता, व्यक्तिवादी साहस और निराशा, पाखण्ड और ऐसा आत्मविश्लेषण, जो पराजय से प्रसूत होकर पराजय की ओर ले जाता है मनु की विशेषता है। मनु अपनी पराजय को पलायन तथा सामरस्य से छिपाता है।[1]

मनु हताश, एकाकी और निराशाग्रस्त है क्योंकि उसका अपना पुराना वर्ग शासन सत्ता खो चुका है। नयी ऐतिहासिक, सामाजिक स्थिति के कारण पूँजीवादी व्यक्तिवाद का वह पक्षधर है। वह सामंती शासकवर्गीय वृत्तियों की तानाशाहियत को अपने खून से लिया हुआ है। मुक्तिबोध की राय में प्रसादजी मनु को मन मात्र का प्रतीक घोषित करना भयानक अन्याय है क्योंकि मनु स्वभावतः अहंग्रस्त और पापसंकुल है। मनुष्य का मन सदैव ऐसा नहीं है। मनुष्य मन अच्छे और बुरे का सम्मिश्रण है। उसमें आत्मगरिमा, त्याग, श्रद्धा आस्था बुद्धि विवेक और संकल्प की ऊँची कल्याणकारी दिशाएँ भी होती हैं। लेकिन मनु बुराइयों से युक्त एक कमज़ोर प्राणी है। प्रसादजी और श्रद्धा उस कमज़ोरियों से सहानुभूति प्रकट करते हैं उसे चरित्र नायक बनाते हैं। इडा उस कमज़ोरियों को सहन करती है। इस प्रकार कामायनीकार और उसके पात्र बुराइयों से समझौता कर पूँजीवादी विरासत का अनुगमन करते हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में "मानव चरित्र के क्षेत्र में सत्-असत् मंगल तथा अमंगल, शिव और अशिव के बीच कामायनी में न कभी धनघोर युद्ध छिडता है, न शिव द्वारा अशिव की वास्तविक पराजय ही बतलाई जाती है।"[2]

कामायनी में प्रसादजी का आदर्श जीवनानुभवसंपन्न ज्ञानशक्ति का न होकर आधुनिक अभिजातवर्गीय रहस्यात्मक अद्वैतवाद है। बहुत आलोचकों के अनुसार कामायनीकार काश्मीरी शैवागम से प्रभावित है। लेकिन मुक्तिबोध की राय में प्राचीन

---

1 मुक्तिबोध रचनावली खंड मुक्तिबोध, पृ 207
2 वही पृ 208

शैवागमों से उन्होंने कुछ प्रतीक लिये हैं, जिसका उद्देश्य रहस्यात्मक फैंटेसी खडी कर देना है। प्रसादजी ने मनु की समस्या को अद्वैतवादी धरातल पर उपस्थित कर व्यक्ति को संसार से पालायन सिखलाता है और उस पालायन को डिफैण्ड करता है। साथ ही जड और चेतन में महाचेतन की आनंदमयी अभिव्यक्ति को भले और बुरे तथा दोनों से परे देखते हुए उस दर्शन से अन्ततः विषमताग्रस्त व्यक्तिवादी सभ्यता में परिवर्तित करके दिखाया गया है।

मुक्तिबोध ने कामायनी विश्लेषण के समय उसकी सृजनकालीन परिस्थिति पर विचार किया है। भारतीय साहित्य में प्रसादजी का युग ही ऐसा था कि एक ओर अद्वैतवाद, गाँधीवाद दूसरी ओर रवींद्र भावधारा और तीसरी ओर ब्रिटीश फ्रेंच अमरीकी, जर्मन, जापानी साम्राज्यवाद प्रथम विश्वयुद्ध के अनंतर अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय घटनाचक्र देश के भीतर राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद, भूख गरीबी, गोलियाँ इत्यादी इसके साथ प्रसाद का सांस्कृतिक-सामाजिक वर्ग चरित्र, उनकी निबिड अंतर्मुखता उनकी कल्पनाशीलता तथा स्वयं छायावाद और उसकी आभिव्यक्ति की सीमाएँ, प्रसादजी के जीवन की समस्याओं की तीव्र अनुभुति तथा उनका समाधान प्राप्त करने की भयानक छटपटाहट और इतनी उलझनों और समस्याओं के अद्वैतवादी आदर्शवादी समाधान के अलावा अन्य हल के अभाव का वास्तविक जीवन तथ्य यह है कि कामायनी की सृजन-परिस्थिति को भूलकर वे इसका आकलन नहीं कर सकते हैं।[1]

मुक्तिबोध की राय में कामायनी अपने युग का अवैज्ञानिक, असंस्कृत, अपरिष्कृत प्रतिबिंब हैयदि वह सुपरिष्कृत प्रतिबिंब होता तो तत्कालीन समस्याओं का यथार्थ हल भी प्रस्तुत किया जाता। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद द्वारा कामायनी में चित्रित देव सभ्यता सामंतवादी सभ्यता का समानार्थी है।

## व्यवहारिक समीक्षा

मुक्तिबोध की व्यवहारिक समीक्षाएँ रचनावली में शामिल है। हिन्दी साहित्य के कुछ समसामयिक अंग्रेजी लेखकों के बारे में जैसी पंत, प्रेमचंद, दिनकर, शमशेर, भारत

---

1 मुक्तिबोध रचनावली चार मुक्तिबोध पृ 225

भूषण अग्रवाल आदि पर तथा उनकी श्रेष्ठ कृतियों के आधार पर उन्होंने समीक्षाएँ लिखी है। इन लेखों की विशेषता यह है कि उन्होंने इन लेखकों की श्रेष्ठता एवं कमज़ोरियों पर विचार किया है।

'सुमित्रानंदन पंत एक विश्लेषण' शीर्षक लेख में उन्होंने पंत और प्रसाद की काव्य-दृष्टि की तुलना करते हुए दोनों कवियों के व्यक्तित्व पर ध्यान दिया है। बदलते हुए जगत के बोध के कारण पंतजी का व्यक्तित्व सतत विकासमान है। उनकी संवेदनशील जागरूकता और वास्तव के प्रति उन्मुखता ने उनके काव्य व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाया। साथ ही प्रकृतिसौंदर्य के पूरे रूपाकार को उपस्थित करने का सफल प्रयास और अंतर्मन के गहन भावदृश्यों की मनस्थिति और मनोदशायें प्रदान करने की क्षमता उनकी लोकप्रियता का रहस्य है। पंतजी के शिल्प में नवीनता की अपर्याप्तता है और नये का भार वहन करने में वह असमर्थ है।

पंतजी बाह्य दृष्टि के कवि है लेकिन प्रसादजी में गहन अंतर्मुखता है जो उन्हें अपने में खोये रहने में समर्थ रखती है इसका कारण यह है कि प्रसाद पर निज का बोझ हैं। पंतजी में निज का बोझ कम होने के कारण आंतरिक भावों का आकलन-अध्ययन कम है। पंतजी में ऐतिहासिक अनुभुति है जो उनकी सहानुभूति का विस्तार है जो उन्हें जीवन के वैविध्यपूर्ण क्षेत्रों की ओर ले जाता है। इस प्रकार मुक्तिबोध ने प्रसादजी की अंतर्मुखता एवं पंतजी की बहिर्मुख-दृष्टि का विश्लेषण किया है और साबित किया है कि पंतजी में जनता के समर्थन का जो भाव है।

हरिशंकर परसाई पर मुक्तिबोध का लेख है - 'मध्यप्रदेश का जास्वल्पमान कथाकार हरिशंकर परसाई' है इस लेख में परसाई की राजनैतिक सामाजिक तथा मानवीय दृष्टि पर मुक्तिबोध वितार करते हैं। संवेदनात्मक रूप से यथार्थ का आकलन करने की क्षमता परसाई का सबसे बडा वैशिष्ट्य है।

मुक्तिबोध प्रेमचंद को उत्थानशील भारतीय सामाजिक क्रांति के प्रथम और अंतिम महान कलाकार मानते हैं। भारतीय सामाजिक क्रांति के सामाजिक पक्ष की संवेदना के प्रति प्रेमचंद की उन्मुखता ने उन्हें सामाजिक, प्रगतिशील धारा का प्रवर्तक बनाया। इस लेख में उन्होंने प्रेमचंद की प्रासंगिकता पर चर्चा करते हुए लिखा है ''प्रेमचंद के पात्र

आज हमारे समाज में जीवित है।''[1] प्रेमचंद का कथा साहित्य हम पर प्रभाव डालता है। वे हमारे समाज का चित्रकार ही नही हमारे आत्मा के शिल्पि भी है।

'शमशेर मेरी दृष्टि में' शीर्षक लेख में मुक्तिबोध शमशेर की मौलिक प्रतिभा एवं उनकी कविता को जीवंत बननेवाले तत्वों पर विचार करते हैं। उनके अनुसार शमशेर का शिल्प और काव्य-व्यक्तित्व अद्वितीय है। मुक्तिबोध की राय में - ''अपने स्वयं के शिल्प का विकास केवल वही कवि कर सकता है, जिसके पास अपने निज का कोई ऐसा मौलिक विशेष हो, जो चाहता हो कि उसकी अभिव्यक्ति उसी के मनस्तत्वों के आकार की, उन्हीं मनस्तत्वों के रंग की उन्हीं स्पर्श और गंन्ध की ही हो।''[2] एक मौलिक शिल्पकार को एक नये शिल्प के विकास केलिए आत्मचेतस होना अनिवार्य है। क्योंकि शिल्प का विकास काव्य व्यक्तित्व से अटूट रूप से जुडा हुआ है इसलिए शिल्प में व्यक्तित्व की क्षमता, सीमा, भाव और अभाव, सामर्थ्य और कमज़ोरी, ज्ञान और भ्रम सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हैं। शमशेर अपने अंतर्मन का अवरोध रखनेवाले साहित्यकार है।

एक साधारण कवि से शमशेर का महत्व यह है कि वे कवि होने के नाते इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार भी हैं। ऐसे कवियों ने अपने हृदय में आसीन चित्रकार को पद से हटाकर कवि को अधिष्ठित करते हैं। कवि इम्प्रेशनिस्ट टेकनिक और मनोवृत्ति अपनाकर और इम्प्रेशनिस्टिक चित्रकला के मूल नियमों को काव्य कला में गुप्त रूप से संस्थापित करते हैं। इम्प्रेशनिस्टिक कला के कुछ मौलिक और विशिष्ट गुण कवि में छोडकर उसे त्याग करते हैं। यही गुण अन्य कवियों में नहीं पाये जाते हैं। इम्प्रेशनिस्टिक स्वभाव होने के कारण शमशेर अपनी कविताओं में बाह्य दृश्य के भीतर भाव प्रसग को उपस्थित करते हैं। वे वास्तविक भाव प्रसंग में उपस्थित संवेदनाओं का चित्रण करते हैं। शमशेर के काव्य के प्रसंग और उनकी विशिष्ट संवेदना पक्ष, आलोचकों को तथा पाठकों की समझ नहीं आए। इसलिए उन लोगों केलिए शमशेर की कविताएँ उलझन भरी अस्पष्ट और दुरूह है।[3]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पॉच मुक्तिबोध, पृ 431

2 मुक्तिबोध रचनावली पॉच मुक्तिबोध, पृ 432

यही पृ 436

ओ अप्रस्तुत मन कविता संकलन के द्वारा मुक्तिबोध भारत भूषण की कविताओं की सामान्य विशेषताएँ बतलाते हैं। जीवन जगत की अपूर्णता और व्यक्तित्व विकास की बाधाएँ भारतभूषण की कविताओं में मौजूद है। अपनी मामूलियत के कारण हिन्दी में प्रचलित सभी शैलियाँ उनकी कविताओं में विद्यमान है। उन्होंने शिल्प की सर्वजनीनता सिद्ध कर पुरानी शैली को नयी चमक दी है। मुक्तिबोध की राय में भारत भूषण की कविताओं में एक आजीव व्यक्तिगत स्वर है। जीवन की कई असंगतियों का पर्दाफास एवं अनेक सत्यों का उद्‌घाटन उनमें मौजूद है।[1]

'अंधायुग एक समीक्षा' में मुक्तिबोध ने धर्मवीर भारती के अंधायुग की आलोचना की है। अंधायुग फैंटसी शिल्प पर आधारित है। इसके ज़रिए भारतीजी सामाजिक ह्रास का वास्तविक चित्रण करते हैं। मुक्तिबोध अंधायुग की सफलता इसमें पहचानते है कि वह लेखक के भाषा और भाव विचार बोलते हैं और यथार्थ के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त है। लेकिन इसमें समाजशास्त्रीय जिज्ञासा का अभाव है। वे ह्रास के लक्षणों को इन कारणओं से मिश्रित कर देते हैं।

'धरती एक समीक्षा' शीर्षक लेख त्रिलोचन के धरती संकलन का चिंतन है। मुक्तिबोध लिखते हैं - धरती में त्रिलोचन ने मात्र काव्य सामर्थ्य ही नहीं वरन अपने सफल प्रसंगों तथा मौलिक शैली विधान के सहारे जीवन की विस्तृत दायरे के विभिन्न भागों का काव्यात्मक आकलन करने की क्षमता भी प्रकट करती है।[2] इस कविता में संघर्ष के व्यक्तिगत तथा सामाजिक वास्तविकता को गंभीरता से वे प्रकट करती हैं।

अपनी खास भाव-पद्धति और शैली के कारण सुभद्राजी को हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है। मुक्तिबोध लिखते हैं - सुभद्राजी के काव्य को अपनी पारिवारिक जीवन से गहरा सरोकार है उनके लिए परिवार का अर्थ कुटुंब नहीं बल्कि जो अपना-सा हो जाय वही अपने परिवार का व्यक्ति है। अर्थात् सुभद्राजी की पारिवारिक चिंतन में एक तरफ की सामाजिकता है जो उनकी कविताओं में व्यक्त है।[3]

---

1 मुक्तिबोध रचनावली पाँच मुक्तिबोध, पृ 443
वही पृ 374-75
पृ 389-90

मुक्तिबोध की व्यवहारित समीक्षाएँ मात्र रचनाकारों और रचनाओं के प्रति उनकी सामान्य चिंताएँ नहीं है। इन समीक्षकों में मुक्तिबोध की बुनियादी समाजशास्त्रीय दृष्टि ही व्यक्त होती है।

# उपसंहार

हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध ऐसे साहित्यकार है जिन्हें शिखर साहित्यकार की संज्ञा दी जा सकती है। कविता, उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि श्रेत्रों में सशक्त रूप से अपनी लेखनी चलानेवाले मुक्तिबोध ने कवि के रूप में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। उनकी कविताएँ समसामयिक सच्चाई का सीधा साक्षात्कार करनेवाली है। उनकी कविताएँ, कवि के रूप में मुक्तिबोध की भूमिका को प्रत्येक काल में प्रामाणिक और प्रासंगिक हैं। तारसप्तक की कविताओं से लेकर 'चाँद का मुँह टेढा है' और 'भूरी भूरी खाक धूल' तक की उनकी काव्य यात्रा में काव्यात्मक विकास की सहज पारिणतियाँ दिखाई देती हैं।

बेचैनी वस्तुतः व्यक्तिमन की अस्मिता है। मुक्तिबोध इसी बेचैनी के कारण जीवन भर संघर्षरत दीख पडते हैं। संभवतः उनकी कविताओं में दीख पडनेवाली यह बैचैनी जहाँ एक ओर रचनाकार के भीतर की अहं की ओर संकेत करती है, वहीं दूसरी ओर युगीन परिस्थितियों से/संगीत न बैठा पाने के कारण होनेवाला द्वंद्व है। इस द्वंद्व या संघर्ष को मुक्तिबोध की कविता के केन्द्र में रखा जा सकता है। संघर्षों की एक कतार मुक्तिबोध की कविताओं में दिखाई पडती हैं। प्रत्येक पहलू में हे - जैसे एक व्यवस्थित जीवन दर्शन को अपनाने का संघर्ष, किसी साहित्यिक विधा में स्वीकार का संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष। परंतु मुक्तिबोध के काव्य को व्यक्तिगत भावनाओं या समस्याओं का संघर्ष नहीं कहा जा सकता। उनका संघर्ष वस्तुतः समाज से जुडकर एक विस्तृत आयाम प्राप्त करता है और अर्थवान हो जाता है। वर्तमान व्यवस्था की आमानवीयता में पिसता हुआ/मनुष्य को ही मुक्तिबेध ने अपने कविताओं में तरजीह दी है और इस मनुष्य के संघर्ष से ही मुक्तिबोध का वास्तविक संघर्ष है।

मुक्तिबोध आरंभ में छायावादी रोमानियत से प्रभावित दीख पडते हैं। यहाँ उनका संघर्ष भी झीना झीना भी रहा है। जहाँ वे पहले व्यवस्थित जीवन दर्शन अपनाने के मोह

होता। उनके काव्य में जहाँ व्यक्ति केन्द्रीकरण दिखाई दैता है वहीं उनमें समाजवादी दृष्टि भी दीख पडती है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के माध्यम से समाज की नब्ज को पकडने का सफल प्रयास मुक्तिबोध की कविताओं में दीख पडता है। यहाँ वे 'वाद' के घेरे में आनेवाले कवियों से भिन्न, निजी वैशिष्ट्य के अधिकारी बन जाते हैं।

समय के जिस संदर्भ से हम गुज़र रहे हैं, उसके वास्तविक रूप एक परदे के भीतर है। मुक्तिबोध इस समय में जीनेवाले मानव के साथ यात्रा करते हुए इस समय की व्यवस्था की अमानवीयता का पर्दाफाश करते हैं। एक बौद्धिक विवेकशील प्रतिबद्ध कलाकार के रूप में मुक्तिबोध यहाँ दिखाई देते हैं। पूँजीवादी अमानवीय व्यवस्था में राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक, धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्र में हुए विघटन के चित्र मुक्तिबोध की कविताओं के माध्यम से हमारे सामने खुलते जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर भी उनकी नज़र जाती है और वे पाते हैं कि भारतीय राजनैतिक व्यवस्था इसका एक हिस्सा मात्र है।

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी को मुक्तिबोध का काव्य ''बार बार फॉकस'' करता है। इस बुद्धिजीवी के विवेक रहित समझौतावाद को लेकर मुक्तिबोध में जहाँ खेद है वहीं एक प्रकार की छटपटाहट भी दिखाई देती है। अवसरवाद और पलायनवाद जहाँ एक महामारी की तरह फैला हुआ है वहाँ मुक्तिबोध मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की क्षमता पर विश्वास करते हुए इस महामारी से समाज को बचाने केलिए उनके आगमन का स्वप्न देखते हैं और बुद्धिजीवियों के सर्वहारा वर्ग की ताकत बन जाने की वांछा करते हैं।

मुक्तिबोध जहाँ अपने युग में एक प्रामाणिक और प्रासंगिक कवि के रूप में सामने आते हैं, वहीं हिन्दी कविता में समकालीनता के अग्रदूत भी बन जाते हैं। आगे चलकर आलोचकों ने जिसे समकालीनता की संज्ञा दी, उसकी अधिकांश विशेषताएँ मुक्तिबोध की कविता में विद्यमान है। वर्तमान युग में इन कविताओं की प्रसंगिकता को देखकर ही संभवतः समाक्षकों ने उन्हें 'बीस साल बाद का कवि' कहकर पुकारा। आश्चर्य की बात है कि समकालीन मानव जिन स्थितियों में जीता है, उनके साथ सहस्थिति का एहसास मुक्तिबोध की कविताओं में मिलता है।

मुक्तिबोध की कविताओं में कहीं वर्तमान युग की प्रतियोगिता का चित्रण है, तो कहीं आज के मौकापरस्त राजनैतिक नेताओं की स्वार्थपरकता, अवसरवादिता तथा शोषण का चित्रण है। कहीं मध्यवर्गियों के समझौतावादी दृष्टि का चित्रण हे तो कहीं निम्नवर्गियों की कष्टदायक ज़िन्दगी का चित्रण है। उनकी कविताओं में चित्रित बातें आज भी जारी हैं। उनकी कविताएँ काल के साथ चलते हुए समसामयिक युग का भी पर्दाफाश करने के प्रयास का परिणाम है; युग की बदलती करवट की साक्षी हैं और जनजीवन से गहरा संबंध रखनेवाली हैं। इतिहास की गहरी अंतर्दृष्टि मुक्तिबोध में दिखाई देती है, अतीत की जानकारी उनको है, वर्तमान को उन्होने गहराइयों में उतर कर देखा-परखा है। संभवतः इसी कारण भविष्य भी उनके लिए स्पष्ट रहा। मानव इतिहास की विरासत को समझनेवाले कवि होने के कारण ही मुक्तिबोध की कविताएँ देश और काल की सीमा का अतिक्रमण करती हुई समकालीनता और शाश्वतता को एक साथ वहन करती हैं। इसी कारण मुक्तिबोध की कविताएँ कालजयी हो जाती हैं।

यद्यपि कवि के रूप में मुक्तिबोध चर्चा के केंद्र में रहे। अन्य दो विधाओं में भी उन्होंने अपनी असामान्य रचनात्मक दक्षता दर्शाई है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मुक्तिबोध की कहानियाँ भले ही अचर्चित रहा फिर भी हिन्दी कहानी के रचनाविधान तथा संवेदनात्मक संभावनाओं को दिशा देने में उनकी बहुत सी कहानियों की महती भूमिका रही है।

कई दृष्टियों से मुक्तिबोध की कहानियाँ विशिष्टहै। जो कहानियाँ विशिष्ट है उनमें जीवन के सूक्षमतम तानेवाने को प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है। ऐसे संकेत हिन्दी में बहुत कम कहानियों ने मिलते हैं। 'क्लॉड ईथर्ली' जैसी कहानी हिन्दी में अन्यत्र लिखी

आलोचक के रूप में मुक्तिबोध अवश्य चर्चित हुए हैं। आधुनिक युग में कवि आलोचकों की सुदृढ परंपरा का जो विकास हुआ उसमें मुक्तिबोध भी है। हिन्दी आलोचना में मुक्तिबोध मार्क्सवादी सौंदर्य़ शास्त्र के पक्षधर है। मुक्तिबोध के पहले ही मार्क्सवादी आलोचना का विकास हो चुका था। लेकिन उसे अंतर अनुशासनात्मक बनाने का कार्य मुक्तिबोध ने किया। उनकी आलोचना में समाज-शास्त्र, नृतत्व शास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन, इतिहास आदि विद्यमान है।सौन्दर्य शास्त्र को इस तरह नया आयाम देने का कार्य ही मुक्तिबोध ने किया है। अतः हिन्दी की जड मार्क्सवादी आलोचना से मुक्तिबोध की आलोचना एकदम भिन्न है। रचना और समय सही अनुपात में उनकी आलोचना दृष्टि में सुरक्षित है।

हिन्दी की साहित्य संवेदना और साहित्यिक चिंतन में मुक्तिबोध का प्रभाव लंबे अंतराल के बाद भी रहेगा। कारण यह है मुक्तिबोध में सबसे अधिक गुंजायमान स्वर मुक्ति का है। स्वतंत्रता के प्रतिमान को अपनी रचनाओं के रोये रेशे में पहचाननेवाले मुक्तिबोध निरंतर कहीं न कहीं किसी न किसी संदर्भ में चर्चित होते रहेंगे।

# परिशिष्ट

## I. हिन्दी ग्रन्थ


1. तार सप्तक, सं. अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं. व 1972
2. चाँद का मुँह टेढा है, गजाननमाधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं. व. 1985
3. भूरी भूरी खाक धूल, मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. व. 1987
4. एक साहित्यिक की डायरी, गजानन माधव मुक्तिबोध, भरतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1980
5. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, मुक्तिबोध, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, सं. व. 1964
6. नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, मुक्तिबोध, रादाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. व. 1971
7. काठ का सपना, मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञापीठ प्रकाशन नयी दिल्ली, सं. व 1967
8. सतह से उठता आदमी, मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं व. 1971
9. मुक्तिबोध रचनावली भाग 1-6, सं. नेमीचंद्र जैन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति 1998
10. अंतस्तल का पूरा विप्लव अंधेरे में, सं निर्मला जैन,राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. व. 1996 द्वि सं 1986
11. आद्यबिंब और नयी कविता, मिश्र (कृष्णमुरारी), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. व. 1980
12. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ एवं वर्णन शैली, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा-3, सं व. 1972

13. आधुनिक कविता की यात्रा, चतुर्वेदी शंभूनाथ, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, सं. व. 1983
14. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य बोध के विविध आयाम, शबरी संस्थान, दिल्ली-32, सं. व. 1989
15. आधुनिक हिन्दी कविता, जगदीश चतुर्वेदी, मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, लि., सं. व. 1975
16. आधुनिक परिवेश और नवलेखन, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, सं. व. 1970
17. आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि, कृष्णपाल शर्मा, ग्रन्थमकानपुर, सं व. 1974
18. आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान, रामयतन सिंह (भ्रमर), नाशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, सं. व. 1965
19. आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन, सरजू प्रसाद मिश्र पुस्तक संस्थान कानपुर, सं. व. 1977
20. आधुनिक हिन्दी कविता सर्जनात्मक संदर्भ, रामदरस मिश्र, इन्द्रप्रस्थ प्राकाशन, दिल्ली, सं. व. 1986
21. कामायनी एक पुनर्विचार, गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
22. कविता का जनपद, अशोक वाजपेय,राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं व. 1992
23. कविता कालयात्रिक, लक्ष्मीनारायण, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. व. 1988
24. कविता के नये प्रतिमान, नामपर सिंह,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं व. 1968
25. कवि कहानीकार अज्ञेय और मुक्तिबोध, डॉ भरत सिंह, वाणी प्रकाशन,दरियागंज, सं. व. 1998
26. कवि कर्म और काव्य भाषा, परमानंद श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी, सं. व. 1965
27. कविता और मूल्य संक्रमण, कमलेश गुप्ता, प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली, सं व 1985

28. कविता की तलाश, चन्द्रकांत बाँदि वडेकर, विभूति प्रकाशन, दिल्ली, सं व. 1983
29. कविता की पहचान, जीवन प्रकाश जोशी, भारती भाषा प्रकाशन दिल्ली,सं. व. 1978
30. कविता की मुक्ति, नन्दकिशोरनवल, वाणी प्रकाशन, सं. व. 1980
31. कविता की लोक प्रकृति, जीवन सिंह, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. व. 1990
32. कविता का अंतर अनुशासनीय विवेचन, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, पचौरी प्रकाशन, सं. व 1986
33. कविता दुष्टि, भारत भूषण अग्रवाल, मैकमिलन कंपनी लि सं व 1978
34. नयी कविता की चेतना, डॉ. जगदीश कुमार, सन्मार्ग प्रकाशन,दिल्ली, सं. व. 1972
35. नयी कविता का मूल्यांकन परंपरा और प्रगति की भूमिका, डॉ. हरिचरण वर्मा, आशा प्रकाशन, दिल्ली, सं व. 1972
36. नयी कविता कथ्य एवं विमर्श, अरुण कुमार, चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद, सं 1988
37. नयि कविता में वैयक्तिक चेतना, अवध नारायण त्रिपाठी, जवाहर पुस्तकालय मधुरा, सं व. 1979
38. नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना, डॉ देवराज पथिक कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, सं व 1985
39. नयी रचना और रचनाकार, डॉ. दयानंद शर्मा मधुर अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर, सं व 1990
40. नयी कविता की पहचान, राजेन्द्र मिश्र, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं व 1980
41. नयी कविता की भूमिका, डॉ. प्रेमशंकर, नाशनल पब्लिशिंड हाउस, नयी दिल्ली, सं व 1988